1989(5) eILR(PAT) SC 107

[1990] 3 उम० नि० प० 79

फेडरेशन आफ होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन आफ इंडिया

बनाम

भारत संघ और अन्य

2 मई, 1989

म० न्या० आर० एस० पाठक, न्या० सव्यसाची मुखर्जी, एस० नटराजन, एम० एन० वेंकटचलय्या और एस० रंगनाथन

संविधान, 1950—अनुच्छेद 246 और 248 और अनुसूची 7 की सूची I प्रविष्टि 97 और सूची 2 की प्रविष्टि 54 और 62—[सपठित व्यय कर अधिनियम; 1987 (1987 का 35) की धारा 2 (2), (6), (10), 3, 4; 5, 6]—व्यय-कर अधिरोपित करने की विधायी क्षमता—व्यय कर की प्रकृति—ऐसे होटलों में जिनमें प्रतिदिन प्रति व्यक्ति वास-सुविधा के लिए 50 रुपए अथवा अधिक प्रभारित किए जाते हैं, आवास खाद्य और पेयों आदि के प्रदाय के संबंध में उपगत 'प्रभार्य व्यय' पर कर का उद्ग्रहण—उक्त उद्गृहीत व्यय कर सूची I की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अंतर्गत आता है और वह संविधान की अनुसूची 7 की प्रविष्टि 62 अथवा 54 के अंतर्गत आने वाले माल के विक्रय के लिए संदत्त कीमत अथवा विलास वस्तुओं पर कर नहीं है—विलास वस्तुओं पर कर और व्यय पर कर एक ही विषय-वस्तु के दो भिन्न पहलू हैं—यदि सामान्य व्यय के बजाय केवल विनिर्दिष्ट प्रकार के व्यय पर ही कर उद्गृहीत किया जाता है तो भी यह व्यय कर ही रहेगा।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 246, 245 और 239—कर उद्गृहीत करने के लिए विधायी सक्षमता—उद्ग्रहण की सही प्रकृति और स्वरूप का अवधारण—इस संबंध में न्यायालय द्वारा सार और तत्व का सिद्धांत लागू किया जाना चाहिए—पहलू वाला सिद्धांत-एक ही विषय के भिन्न विधायी शक्तियों के अधीन भिन्न पहलू हो सकते हैं—न तो कर का अध्युपाय और न ही विधायी परिपाटी तब सुसंगत है जब अनुच्छेद 248 के अधीन अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए कोई विशिष्ट अथवा अज्ञात उद्भव वाला कर अधिरोपित किया जाता है—अर्थशास्त्रियों का उद्ग्रहण के बारे में मूल्यांकन अथवा आर्थिक परिणाम सुसंगत नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 265—कर की प्रकृति कर के अध्युपाय से भिन्न है—कर का अध्युपाय सरकार की वित्तीय नीति पर निर्भर करता है—यह आवश्यक नहीं है कि कराधायक विधान समस्त क्षेत्र के बारे में हो बल्कि वह केवल कतिपय पहलुओं के संबंध में हो सकता है—विधानमंडल कराधान के लिए वस्तुओं और माल का चुनाव कर सकता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद—14 [सपठित व्यय कर अधिनियम, 1987 (1987 का 35) की धारा 3, 4, 5, (घ)]—युक्तियुक्त वर्गीकरण—उक्त धाराओं के अधीन कर के प्रयोजनार्थ होटलों का वर्गीकरण अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करता है—

1989(5) eILR(PAT) SC 107

धारा 5 (घ) में 'अन्य तत्समान सेवाओं' अभिव्यक्ति अस्पष्ट नहीं है—अधिनियम का सभी बातों के बारे में लागू होना अस्पष्ट अथवा मनमाना नहीं हो जाता क्योंकि पूर्वगामी शब्द प्रजाति को विनिर्दिष्ट करते हैं—इस अभिव्यक्ति का प्रविषय केवल निर्वचन का विषय है न कि सांविधानिकता का।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14—कर संबंधी विधान के विभेद की कसौटी—विधानमंडलों को कराधान के प्रयोजनार्थ वित्तीय नीति बनाने के संबंध में व्यक्तियों, विषय-वस्तुओं, घटनाओं आदि का चुनाव करने हेतु विस्तृत विवेकाधिकार प्राप्त है—जब तक शत्रुतापूर्ण विभेद दर्शित नहीं किया जाता तब तक न्यायालय विधानमंडल द्वारा किए गए वर्गीकरण में हस्तक्षेप नहीं करता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 13 और 32—सांविधानिकता की उपधारणा—न्यायिक निषेधाधिकार का प्रयोग केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जिनमें युक्तियुक्त संदेह की कोई गुंजाइश न हो।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19 (1) (छ)—[सपठित व्यय-कर अधिनियम, 1987 (1987 का 35) की धारा 2, 3, 4, और 5]—ये धाराएं अनुच्छेद 19 (1) (छ) का अतिक्रमण नहीं करतीं।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19 (1) (छ)—कराधायक कानून स्वतः अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन प्रत्याभूत स्वतंत्रता पर निर्बंधन की कोटि में नहीं आता—व्यक्तिगत मामलों में पारिणामिक कठिनाई कर का आधिक्य अथवा लाभों में कमी होना आदि अनुच्छेद 19 (1) (छ) का अतिक्रमण गठित नहीं करता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 246 और अनुसूची 7—विधायी शक्ति के वितरण के बारे में विवाद—इस विवाद के समाधान का भार न्यायालयों पर है।

याचियों ने, जो भारत में होटल व्यापार में रत हैं, व्यय-कर अधिनियम, 1987 की सांविधानिकता को चुनौती दी है। अधिनियम में होटलों के ऐसे वर्ग में जिनमें किसी निवासीय वास-सुविधा की इकाई के लिए प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कमरा प्रभार 400 रुपये या उससे अधिक प्रभारित किए जाते हैं पर मूल्यानुसार व्यय कर प्रकल्पित किया है। पहली दलील यह दी गई कि अधिनियम की सही प्रकृति और स्वरूप के अनुसार, विधि के अनुसार लोक वित्त के स्वीकृत सिद्धांतों और विधायी परिपाटी के अनुसार व्यय-कर अधिरोपित नहीं करता बल्कि सारतः और तत्वतः यह सातवीं अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 62 के अंतर्गत विलास वस्तुओं पर कर है अथवा माल के क्रय के लिए संदत्त प्रतिफल पर कर है जो ऐसी लाग गठित करता है जो सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अन्तर्गत आती है और इसलिए यह संसद् की विधायी क्षमता से बाहर है। उपर्युक्त दलीलों को अस्वीकार कर दिया गया। तदनुसार रिट याचिकाएं और अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—भारत संघ को आक्षेपित विधि का सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अधीन अधिनियमित करने की विधायी क्षमता प्राप्त

है। इस सुभिन्न पहलू अर्थात संघ शक्ति के अंतर्गत आने वाले संव्यवहार के 'व्यय' पहलू को प्रभेदित किया जाना चाहिए और उस पर कर अधिरोपित की जाने की विधायी सक्षमता की पुष्टि की जानी चाहिए। यह विषय सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन नहीं आता और यह कि सूची I की प्रविष्टि 86 में अपवर्जन के बावजूद, संघ को, अवशिष्ट शक्ति के निधान के रूप में विधायन की समता थी जब तक ऐसा विषय राज्य को आबंटित न किया जाए अथवा राज्य शक्ति के भीतर न आता हो। (पैरा 1, 20 और 18)

सूची II की प्रविष्टि 62 के अधीन 'व्यय-कर' को उद्ग्रहण से जो प्रभेदित करती है यह है कि कराधान की स्कीम में समय की इकाई में होने वाले व्यय की समग्रता को उन राशियों से भिन्न रूप में ध्यान में रखा गया है जो विलास वस्तुओं पर छुटपुट क्रय के लिए रखी जाती हैं। जहां कहीं विधायी शक्तियां संघ और राज्यों के बीच विभाजित की जाती हैं वहां ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें दो विधायी क्षेत्र प्रकट रूप से एक दूसरे को अतिव्याप्त कर जाएं। वास्तव में किसी विषय 'की बाबत' विधि प्रासंगिक रूप से किसी अन्य विषय को किसी रूप में 'प्रभावित' कर सकती है किंतु यह वही बात नहीं है कि वह विधि पश्चात्कथित विषय पर हो। उसमें अतिव्याप्ति हो सकती है; किंतु वह अतिव्याप्ति विधितः होनी चाहिए। एक ही संव्यवहार में उसके भिन्न पहलुओं में दो या अधिक कराधेय घटना अंतर्वलित हो सकती हैं। न्यायालयों का यह कर्तव्य है, चाहे यह कितना ही कठिन हो, कि वह यह विनिश्चित करें कि किस डिग्री और किस विस्तार तक हर एक विधानमंडल में इन विषयों के वर्गों के भीतर आने वाले विषयों के बारे में प्राधिकार प्राप्त है और यह अपने समक्ष वाले मामले में उनकी क्रमिक शक्तियों की परिसीमाएं परिनिश्चित करें। यह आशय नहीं हो सकता था कि कोई विरोध रहे और ऐसे परिणाम को निवारित करने के लिए दोनों उपबंधों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और एक की भाषा का निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए कि जहां आवश्यक हो वहां दूसरे की भाषा से उसे उपांतरित किया जा सके। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित विधि द्वारा परिकल्पित कर संघ संसद् की विधायी शक्ति के भीतर है। उस भाव में विधि की सांविधानिकता अनिवार्य रूप से ऐसी शक्ति का प्रश्न बन जाती है जो ब्रिटिश संसद् जैसे विधिक रूप से सर्वशक्तिसंपन्न विधानमंडल के विपरीत परिसंघीय संविधान में विधायी सूचियों में की प्रविष्टि के अर्थान्वयन पर निर्भर करता है। यदि सीमित अधिकारिता वाला विधानमंडल अपनी शक्तियों का अतिक्रमण करता है तो ऐसा अतिक्रमण खुला, प्रत्यक्ष और सीधा हो सकता है अथवा किसी दूसरे रूप में प्रच्छन्न अप्रत्यक्ष अथवा गुप्त हो सकता है। पश्चात्कथित अतिक्रमण को अलंकारिक रूप में 'आभासी विधान' कहा गया है जिससे अभिप्रेत है कि यद्यपि प्रकट रूप से विधानमंडल का तात्पर्य अपनी शक्तियों की सीमाओं के भीतर कार्य करना है तो भी सारतः और वास्तव में यह प्रतिषिद्ध क्षेत्र पर अतिक्रमण कर जाता है जिसके लिए यह अवधारण करने के प्रयोजनार्थ कि विधान का सार क्या है, कठोरतापूर्वक यह परीक्षा करने की आवश्यकता है कि विधानमंडल वास्तव में क्या कर रहा है। विधायी परिपाटी का प्रश्न कि किसी विशेष विधायी प्रविष्टि के भीतर क्या विषय आता है उस समय अप्रासंगिक हो जाता है जब ऐसे कर की बाबत विचार किया जा रहा हो जो अपने ही ढंग का (विशिष्ट) अथवा अज्ञात उद्भव वाला है, जिसे अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिरोपित किया जाता है जब तक कि ऐसे कर को सूची II और

II¹ में विनिर्दिष्ट रूप से प्रगणित नहीं किया गया है। दूसरे, ऐसे कोई निश्चायक सामग्री नहीं है जो यह इंगित करती हो कि समुचित विधानमंडल ने इस प्रकार के कर के सिद्धांत को किसी सीमाओं में रखा है। (पैरा 7, 12, 14 और 17)

कर का विषय उद्ग्रहण के अध्युपाय से भिन्न होता है। कर का अध्युपाय इसके आवश्यक स्वरूप अथवा विधानमंडल की सक्षमता का अवधारक नहीं होता। यह संकेत किया गया है कि धारा 5 के खंड (घ) में 'या अन्य तत्समान सेवाओं' अभिव्यक्ति अविनिर्दिष्ट और अस्पष्ट है। इनका आशय उसके अंतर्गत पूर्वगामी शब्दों में वर्णित सेवाओं की भांति की सेवाओं को न कि उसके सदृश सेवाओं को, सम्मिलित करना है। 'ब्यूटी पारलर, स्वास्थ्य क्लब, तरणताल या '' के रूप में' पूर्वगामी अभिव्यक्ति के पश्चात् आने वाली 'अन्य तत्समान सेवाओं' अभिव्यक्ति का ऐसे कानूनी संदर्भ में ऐसे शब्दों का निर्वचन करने में एक निश्चित अर्थ होता है। प्रश्न अर्थान्वयन का है कि क्या ऐसी कोई विशेष सेवा धारा के भीतर आती है और इसमें सांविधानिकता का कोई प्रश्न नहीं है। अनुच्छेद के खंड (1) और (3) की भाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूची II में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की राज्य विधानमंडल की शक्ति सूची I में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की संसद् की अनन्य शक्ति के अधीन है। अतः यदि कोई मामला संघ सूची की किसी प्रविष्टि के अंतर्गत आता है, तो संसद् की उसके संबंध में विधियां बनाने की शक्ति पर कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किए जा सकते हैं। यह स्थिति विधायन की साधारण शक्ति के संबंध में है। विधायी प्रविष्टियां इस प्रकार व्यवस्थित की जाती हैं कि सामान्यतः विधियां अधिनियमित करने की शक्ति और कर अधिरोपित करने की शक्ति पर अलग-अलग विचार किया जाता है। संसद् को उपलब्ध कराधान की विषय वस्तुएं सूची I की प्रविष्टि 82 से 97 तक में प्रगणित की गई हैं; राज्य विधानमंडलों को उपलब्ध विषय-वस्तुएं सूची II की प्रविष्टि 45 से 63 तक में हैं और दोनों को उपलब्ध विषयवस्तु सूची III की प्रविष्टि 44 में हैं। धारा 246 (1) के अधीन संसद् को सूची I में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है—और इसके अंतर्गत कर अधिरोपित करने की शक्ति भी आती है ऐसी स्थिति में और इस तथ्य को देखते हुए कि 1980 वाला अधिनियम सारतः और तत्वतः आय पर कर है, उसकी संवैधानिक मान्यता पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता है। (पैरा 19, 23 और 36)

व्यय-कर सूची I की प्रविष्टि 97 की परिधि के अन्तर्गत आता है। इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि कर व्यय कर नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह सामान्यतः 'व्यय' पर नहीं है बल्कि विनिर्दिष्ट प्रकार के व्यय तक निर्बंधित है। व्यय कर की ऐसी कोई विधिक, न्यायिक, आर्थिक या अन्य संकल्पना नहीं है, जो ऐसे निर्बंधनात्मक अर्थ को न्यायोचित ठहराए। यदि, सिद्धांततः किसी व्यक्ति द्वारा उपगत व्यय ऐसी विषय-वस्तु हो सकता है, जिसके प्रति निर्देश से कर उद्गृहीत किया जा सकता है, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि ऐसा कराधान व्यय की केवल कुछ मदों या प्रवर्गों तक ही निर्बंधित क्यों नहीं किया जाना चाहिए। कराधान हेतु वस्तुओं और माल का चयन किसी भी कर विधान का मर्म है और सुझाई गई प्रकृति की कोई भी परिसीमा संसद् की कराधान करने की इस चयन-शक्ति में अनुचित कांट-छांट है। जहां तक व्यय-कर का संबंध है, पहले एकमात्र प्रवृत्त विधान 1957

वाला अधिनियम था, जो 8 वर्ष की अवधि के लिए प्रवृत्त था। ऐसा अल्पजीवी विधान ऐसी रीति में विधायी शक्ति की परिधि को सीमित करने के लिए तर्क का आधार नहीं हो सकता है, जिसमें उसका उक्त अधिनियमिति के अधीन प्रयोग किया गया था। यदि इस विधान को वापस लेने के पश्चात्, संसद् ने यह समझा कि सभी प्रकार के व्यय पर कर अधिरोपित करना संभव या समीचीन नहीं था और केवल कतिपय दिशाओं में फिजूलखर्ची पर ही ऐसा उद्ग्रहण अधिरोपित करना पर्याप्त, समीचीनी या आवश्यक है, तो निश्चय ही उसे स्थापित विधायी पद्धति के किसी सिद्धांत के आधार पर प्रवारित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 37 38 और 39)

जहां तक व्यय कर का संबंध है, ऐसी विधायी पद्धति भी नहीं है, जो हमारे द्वारा सूची I की प्रविष्टि 97 के अधीन 'व्यय पर कर' की संकल्पना पर कोई परिसीमा अधिरोपित करने के कार्य को न्यायोचित ठहराए। इस न्यायालय का विनिश्चय के परिशीलन जिसमें 1957 वाले अधिनियम की विधिमान्यता कायम रखी गई है ऐसी किसी परिसीमा को न्यायोचित नहीं ठहराता। कर के व्यापक विस्तार से न्यायालय के लिए उसकी विषयवस्तु को 'व्यय' के रूप में उपदर्शित करना और उसे अवशिष्टीय प्रविष्टि के अंतर्गत आने वाले विषय के रूप में मानना सरल हो गया, किंतु उससे यह निष्कर्ष निकाला जाना न्यायोचित नहीं ठहरता है कि कोई कर 'व्यय' के प्रति निर्देश से कर नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसके द्वारा सामान्यतः व्यय पर कर अधिरोपित नहीं किया जाता है, बल्कि वह कुछ विशेष प्रकार या प्रवर्ग के व्यय तक ही स्वयं को सीमित रखता है। जब एक बार यह मंजूर कर लिया जाता है कि यह आवश्यक नहीं है कि कर विषय-वस्तु के संपूर्ण क्षेत्र को ही निःशेष करे, तब विषय-वस्तु की वह सीमा, जो कर अधिरोपित करने के लिए सम्मिलित या चयनित की जानी चाहिए, पूर्णतः संसद् पर छोड़ दी जानी चाहिए और वह केवल विभेद या अयुक्तियुक्तता के किसी मापदंड के ही अधीन होनी चाहिए जिसे संविधान के भाग 3 के उपबंध लागू हों। मात्र इस कारण कि 1987 वाले अधिनियम और राज्य अधिनियमों द्वारा ऐसे कर उद्ग्रहीत किए गए हैं, जिनका ऐसे व्यक्तियों पर अंतिम प्रभाव पड़ता है, जो कतिपय विलास वस्तुओं का उपभोग करते हैं, दोनों का सार और तत्व एक जैसा नहीं माना जा सकता है। विलास-वस्तु पर कर का उद्देश्य कुछ विशेष प्रकार की प्रसुविधाओं, सुविधाओं और लाभों के उपभोग पर कर अधिरोपित करना है, जिस पर विधानमंडल कर नियंत्रण अधिरोपित करना चाहता है। उसका आशय उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं की बेहतर ढंग से देखभाल करने के लिए समाज को प्रोत्साहन देना है, जो उनकी व्यवस्था स्वयं नहीं कर सकते हैं। ऐसा कर विलास-वस्तु की पेशकश करने वाले व्यक्ति या उसका उपभोग करने वाले व्यक्ति पर हो सकता है। वह विलास-वस्तु की व्यवस्था करने के लिए प्राप्त रकम, या विलास-वस्तु का उपभोग करने के लिए संदत्त या खर्च की गई रकम के आधार पर उद्गृहीत किया जा सकता है। बोधगम्य रूप से, वह दो भिन्न आधारों पर हो सकता है। व्यय-कर का उद्देश्य ऐसे व्यय को निरुत्साहित करना है जिसे विधान-मंडल फिजूल या दिखावटी समझता है। प्रथम कर का उद्देश्य कुछ विशेष प्रकार की जीवन-पद्धतियों या उपभोग को निरुत्साहित करना है, जबकि दूसरे का उद्देश्य लोगों को अनुत्पादक या अवांछनीय बातों में व्यय उपगत करने के लिए निरुत्साहित करना है। (पैरा 39 और 49)

अब यह बात सुस्थिर है कि यद्यपि कराधायक विधियां अनुच्छेद 14 से बाहर नहीं हैं तथापि वित्तीय नीति बनाने में विविध आर्थिक कसौटियों के विस्तृत भेद को ध्यान में रखते हुए विधानमंडल को कराधान के लिए व्यक्तियों, विषय-वस्तु, घटनाओं आदि का चुनाव करने के मामले में व्यापक स्वतंत्रता (विवेकाधिकार) प्राप्त है। तदनुसार कराधायक विधि में विभेद की बुराई की कसौटियां कम कठोर हैं। विरोधी, विभेदात्मक व्यवहार के अभिकथनों की परीक्षा करने के लिए जिस बात पर ध्यान दिया जाना है वह उसकी शब्दावली नहीं है बल्कि इसके उपबंधों का वास्तविक प्रभाव है। यह भी माना गया है कि अपवर्जन अथवा सम्मिलित किए जाने के लिए लागू किए जाने वाले कोई प्रमित अथवा निश्चित सूत्र अथवा सैद्धांतिक कसौटी अथवा प्रमित वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं हैं। वह कसौटी केवल ऐसी हो सकती है जिसमें सुस्पष्ट मनमानापन हो जिसे समय की महसूस की जाने वाली आवश्यकताओं और अनुभव द्वारा अनुमाणित सामाजिक अभ्यावश्यकताओं के संदर्भ में लागू किया जा सकता है। वस्तुओं के मूल्य में अथवा आपतन (भार) वाले व्यक्तियों की आर्थिक श्रेष्ठता के बीच भेद पर आधारित वर्गीकरण भी सुमान्य हैं। युक्तियुक्त वर्गीकरण वह है जिसके अंतर्गत वे सब व्यक्ति आ जाएं जो एक ही जैसी स्थिति वाले हैं और उनमें ऐसा कोई नहीं है जो कि एक जैसी स्थिति वाला नहीं है। यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या व्यक्ति एक ही जैसी स्थिति में हैं, हमें वर्गीकरण के और विधि के प्रयोजन से परे देखना होगा। प्रस्तुत मामले में वर्गीकरण के आधारों को मनमाना और अबोधगम्य नहीं कहा जा सकता और न ही ऐसा जिसका विधि से उद्देश्य के साथ तर्कपूर्ण संबंध न हो। ऐसे होटल को जिसमें आवास सुविधा की इकाई की प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कीमत 400 रुपये से ऊपर है उसे विधायी प्रज्ञा के अनुसार उन व्यक्तियों की आर्थिक श्रेष्ठता के आधार पर एक अलग वर्ग समझा जा सकता है जो इसके शुल्क, सुविधा और सेवाओं का उपभोग कर सकते हैं। इस विधायी धारणा को अतर्कपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह भी समान रूप से सुमान्य है कि न्यायिक निषेधाधिकार का प्रयोग केवल ऐसे मामलों में ही किया जाना है जिसमें युक्तियुक्त संदेह के लिए कोई गुंजाइश न हो। सांविधानिकता की उपधारणा की जाती है। (पैरा 21 और 22)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1983]	3 उम० नि० प० 889 =[1983] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1019 : **मैसर्स हैक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लि० बनाम बिहार राज्य;**	21
[1982]	1 उम० नि० प० 210 =[1982] 1981—2 एस० सी० आर० 808 : **भगवान दास जैन बनाम संघ;**	39
[1976]	3 उम० नि० प० 1149 =[1976] 1976 (2) एस० सी० आर० 690 : **अब्दुल कादिर एंड सन्स बनाम केरल राज्य;**	34
[1976]	1976 (3) एस० सी० आर० 413 : **आय-कर अधिकारी बनाम एन० तकीम राय लिम्बे;**	21

[1976] 1 उम० नि० प० 1331=[1976] 1976 (1) एस० सी० आर० 562 पृ० 573—74 :
केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम इंडियन एल्यूमीनियम कंपनी; 44

[1975] [1975] 2 उम० नि० प० 126=1975 (2) एस० सी० आर० 715 :
जी० के० कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य; 22

[1974] [1974] 3 उम० नि० प० 2054=1970 (2) एस० सी० सी० 27 :
जयपुर होजरी मिल्स लि० बनाम राजस्थान राज्य; 22

[1974] [1974] 2 उम० नि० प० 152=1974 (3) एस० सी० आर० 760 :
गुजरात राज्य बनाम श्री अम्बिका मिल्स लि०; 22

[1973] [1973] 2 उम० नि० प० नि० सा० 33=1973 (2) एस० सी० आर० 502 :
हीरालाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 22

[1972] 1972 (2) एस० सी० आर० 33 पृ० 67 :
भारत संघ बनाम एच० एस० डिल्लों; 11, 18, 37

[1971] 1971—(1)एस० सी० आर० 195 :
दान-कर अधिकारी बनाम डी० एच० नजारेथ आदि; 37

[1966] 1966—(2) एस० सी० आर० 22 :
भार्गव बनाम संघ; 39

[1965] ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1375 :
नवनीत लाल बनाम ए० ए० सी; 39

[1962] 1962 (1) एस० सी० आर० 517 :
मैसर्स सैनिक मोटर्स बनाम राजस्थान राज्य; 19

[1961] 1961– (2) एस० सी० आर० 537 :
हिंगीर-रामपुर कोल कंपनी वाला मामला; 47

[1959] (1959) एस० सी० आर० 379 :
मद्रास राज्य बनाम गैनोन डंकर्ली कंपनी; 39

[1958] (1958) एस० सी० आर० 1422 पृ० 1479 और 1490 ;
सुन्दर रामप्यार वाला मामला; 35

[1955] 1955 (1) एस० सी० आर० 829 :

नवीनचन्द्र मफतलाल बनाम आय-कर आयुक्त, मुंबई नगर; 17

[1949] (1949) 338 यू० एस० 604 :

सेक्रेटरी आफ एग्रीकल्चर बनाम सेन्ट्रल रायग रिफाइनिंग कंपनी; 22

[1948] 1948 एफ० सी० आर० 207 :

रल्ला राम वाला मामला; 46

[1945] 1945 एफ० सी० आर० 179 :

प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी और अन्य बनाम बैंक आफ कामर्स; 12

[1945] 1945 एफ० सी० आर० 179 (प्रिवी कौंसिल) पृ० 193 :

गवर्नर जनरल इन कौंसिल बनाम प्रोविंस आफ मद्रास; 14

[1942] 1942 एफ० सी० आर० 90 :

प्रोविन्स आफ मद्रास बनाम बोद्दू पैदन्ना एंड सन्स; 45

[1939] 1939 एफ० सी० आर० 18 :

मध्य प्रांत और बरार अधिनियम वाला मामला; 44

[1912] (1912) ए० सी० 571 पृ० 581 :

अटर्नी-जनरल फार ओनटेरियो बनाम अटर्नी-जनरल फार कनाडा; 18

[1899] (1899) ए० सी० 580 पृ० 587 :

यूनियन कोलियरी कंपनी आफ ब्रिटिश कोलम्बिया बनाम ब्राइडन; 14

411 यू० एस० 1 :

सैन एन्टोनिक स्कूल डिस्ट्रिक्ट बनाम रोडिगज. 21

प्रभेदित निर्णय

[1972] 1972—(1) एस० सी० आर० 470 :

आजम झा बहादुर बनाम व्यय कर अधिकारी. 7, 32

निर्दिष्ट निर्णय

[1981] 1981 (2) एस० सी० आर० 364 :

इण्टरनेशनल टूरिस्ट कारपोरेशन बनाम हरियाणा राज्य; 10

[1959] (1959) एस० सी० आर० 379 पृ० 482 :

वैलेस ब्रदर्स वाला मामला; 16

1989(5) eILR(PAT) SC 107

[1948] (1948) एल० आर० 75 :

बैलेस ब्रदर्स एंड कंपनी लि० बनाम आय-कर आयुक्त, मुंबई शहर; 8

[1941] ए० आई० आर० 1941 एफ० सी० 47 :

सुब्रामण्यम् चेट्टियार बनाम मुत्तुस्वामी गोडन; 10

[1933] 1933 ए० सी० 156 :

क्राफ्ट बनाम डनफी; 8

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 1987 की रिट याचिका सं० 1395 (जिसके साथ 1987 की रिट याचिका सं० 1540, 1542, 1538, 1541, 1598, 1600, 1660, 1669-71 और 1988 की रिट याचिका सं० 287 की भी सुनवाई की गई।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन की गई रिट याचिका।

याचियों की ओर से — सर्वश्री एन० ए० पालखीवाला, टी० आर० अंध्यारूजिना, सोली जे० सोराबजी, आर० दादा, एस० गणेश, जे० आर० गैगरट, बी० आर० अग्रवाल, पी० जी० गोखले, वी० बी० अग्रवाल, आर० जे० गैगरट, आर० बी० हाथीखानावाला, आर० एफ० नरीमन, पी० एच० पारेख, संजय भरतरी, एन० के० एस० मेनन, आर० के० ढिल्लों, कुमारी रोहिणी छाबड़ा, कुमारी सुनीता शर्मा और कुमारी आयशा मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री के० पराशरण, बी० दत्त, डा० वी० गौरी शंकर, एस० के० ढोलकिया, पी० एस० पोटी, जी० ए० शाह, वी० जगन्नाथ राव और के० सुधाकरण, बी० बी० आहूजा, एच० के० पुरी, ए० सुब्बा राव, ए० एस० भस्मे, के० आर० नम्बियार, एम० एन० श्राफ, एम० वीरप्पा आर० मोहन, आर० अय्यमपेरुमल, जे० पी० मिश्रा और कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम० एन० वेंकटाचलय्या ने दिया।

न्या० वेंकटाचलय्या—भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इन रिट याचिकाओं में याचियों ने, जो भारत में होटल उद्योग में रत अथवा उससे संबद्ध हैं, व्यय कर

अधिनियम, 1987 (1987 का केंद्रीय अधिनियम सं० 35) की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी है। अधिनियम में होटलों के ऐसे वर्ग में जिनमें किसी निवासीय वास सुविधा की किसी इकाई के लिए 'कमरा-प्रभार' प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 400 रुपये है, उपगत 'प्रभार्य-व्यय' पर मूल्यानुसार 10 प्रतिशत कर प्रकल्पित किया गया है। अधिनियम की धारा 5 में यथा परिभाषित 'प्रभार्य-व्यय' के अंतर्गत किसी वास सुविधा, निवासीय या अन्यथा, खाद्य अथवा पेय का प्रबंध चाहे वह होटल में हो या बाहर अथवा ऐसे होटल में भाड़े या पट्टे पर कोई वास सुविधा अथवा उस धारा में प्रकल्पित किसी अन्य सेवा के संबंध में किसी ऐसे होटल में उपगत व्यय या ऐसे होटल को किया गया संदाय है। किंतु 'विदेशी मुद्रा में उपगत व्यय अथवा किए गए संदाय को अथवा ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिन्हें कतिपय राजनयिक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं, किए गए व्यय या संदाय को इससे छूट प्राप्त है।

'अधिनियम' की शक्तिमत्ता को विधायी क्षमता के अभाव और अनुच्छेद 14 और 19 (1) (छ) के अधीन अधिकारों के अतिक्रमण के आधारों पर चुनौती दी गई है। भारत संघ ने आक्षेपित विधि को सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अधीन अधिनियमित करने की विधायी क्षमता का समर्थन करने की ईप्सा की है।

2. 1987 की रिट याचिका सं० 1395 पक्षकार बनाने के संबंध में बहुत व्यापक है और साधारणतया उसे ऐसा समझा जा सकता है मानो वह चुनौती के समर्थन में दी गई दलीलों का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें प्रथम याची 'फेडरेशन आफ होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन आफ इंडिया' है—जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह भारत में 1000 से भी अधिक सदस्य याचियों का प्रतिनिधि निकाय है। याची सं० 2 से 5 फेडरेशन के क्षेत्रीय संगम् (रीजनल एसोसिएशन) हैं और याची सं० 6 और 7 दो होटल कंपनियां हैं जिनके स्वामित्व में भारत में बहुत से होटल हैं। याची सं० 8 और 9 भारतीय नागरिक हैं जो क्रमशः याची सं० 6 और 7 के निदेशक और अंशधारी हैं। याची सं० 10 चार्टर्ड एकाउंटेंट का व्यवसाय करता है जिसने यह दावा किया है कि वह फेडरेशन के सदस्यों के स्वामित्व में भारत के बहुत से होटलों में सेवाओं का उपयोग करता है। याचियों को इतने व्यापक रूप में पक्षकार बनाया गया है ताकि उसके अंतर्गत प्रभावित होने वाले सभी हित आ जाएं जिससे कि सभी दृष्टिकोणों से वाद लाने के लिए अपेक्षित बातों की पूर्ति हो सके।

3. आक्षेपित अधिनियम से पूर्व 1987 का व्यय कर विधेयक सं० 90 संघ विधान-मंडल (संसद्) में 21 अगस्त, 1987 को पुरःस्थापित किया गया था। यह 14 सितंबर, 1987 को अधिनियम बना। इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है। अधिनियम की धारा 1 (3) के अधीन अपेक्षित अधिसूचना 14 अक्तूबर, 1987 को जारी की गई थी जिसके द्वारा 1 नवंबर, 1987 उस तारीख के रूप में नियत की गई थी जिस तारीख को अधिनियम प्रवृत्त होगा।

1987 के व्यय कर विधेयक सं० 90 में उद्देश्यों और कारणों का कथन निम्नलिखित है—

"यह विधेयक ऐसे होटलों में उपगत व्यय पर कर अधिरोपित करने की ईप्सा करता है जिनमें निवासीय वास सुविधा की किसी इकाई के लिए कमरा प्रभार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 400 रुपये या उससे अधिक है। यह कर किसी वास सुविधा, खाद्य पेयों और कतिपय अन्य सेवाओं के प्रवर्ग के संबंध में उपगत व्यय के 10 प्रतिशत की दर पर उद्गृहीत किया जाएगा। यह कर विदेशी मुद्रा में उपगत व्यय अथवा उन व्यक्तियों की दशा में लागू नहीं होगा जिन्हें राजनयिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं।"

4. कदाचित् चुनौती के आधारों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए अधिनियम के उपबंधों का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण आवश्यक है। धारा 4 प्रभारी धारा है जिसमें यह कहा गया है—

"इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के प्रारंभ से ही, प्रभार्य व्यय के दस प्रतिशत की दर पर कर प्रभारित किया जाएगा।"

'प्रभार्य-व्यय' पद को धारा 5 के खंड (क), (ख), (ग) और (घ) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार हैं—

"इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, प्रभार्य व्यय से, निम्नलिखित के उपबंध के लिए किसी ऐसे होटल में उपगत व्यय या ऐसे होटल को किया गया संदाय अभिप्रेत है जिसे यह अधिनियम लागू होता है—

(क) कोई निवासीय या अन्य वास-सुविधा; या

(ख) होटल द्वारा या होटल में किसी अन्य व्यक्ति द्वारा खाद्य या पेय का उपबंध चाहे वह होटल में हो या बाहर; या

(ग) ऐसे होटल में भाड़े या पट्टे पर कोई वास-सुविधा; या

(घ) ब्यूटी पार्लर, स्वास्थ्य क्लब, तरणताल या अन्य तत्समान सेवाओं के रूप में या तो होटल द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा होटल में कोई अन्य सेवा,"

(धारा 5 के शेष उपबंधों को संप्रति अनावश्यक समझते हुए छोड़ दिया गया है)

'निर्धारिती', 'होटल', 'कमरा-प्रभार' कुछ ऐसी सारवान् अभिव्यक्तियां हैं जिन्हें निर्वचन खंड में परिभाषित किया गया है।

"2 (1) 'निर्धारिती' से इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन संदेय व्यय-कर संग्रहण के लिए उत्तरदायी व्यक्ति अभिप्रेत है।

2(6) 'होटल' के अंतर्गत ऐसा भवन या भवन का भाग है जिसमें धनीय प्रतिफल के लिए, निवास की जगह कारबार के रूप में, दी जाती है।

2 (10) 'कमरा-प्रभार' से किसी होटल में निवास की जगह की किसी इकाई के लिए प्रभार अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत—

(क) फर्नीचर, एयर-कंडीशनर, रेफ्रीजरेटर, रेडियो, संगीत प्रणाली, टेलीफोन टेलीविजन के लिए; और

(ख) ऐसी अन्य सेवाओं के लिए जो प्रसामान्यतया होटल द्वारा कमरा किराए में सम्मिलित की जाती हैं, प्रभार भी हैं, किंतु इसके अंतर्गत खाद्य, पेय और उपखंड (क) और उपखंड (ख) में निर्दिष्ट सेवाओं से भिन्न किन्हीं सेवाओं के लिए प्रभार नहीं हैं।"

धारा 3 वह महत्वपूर्ण उपबंध है जो ऐसे होटल जिसको 'अधिनियम' लागू होता है, के वर्गीकरण के लिए अंतर अधिकथित करता है। उस धारा में यह उपबंध है कि वह अधिनियम ऐसे होटल में उपगत किसी 'प्रभार्य व्यय' के संबंध में लागू होगा जिसमें ऐसा व्यय उपगत किए जाने के समय निवास की जगह के लिए 'कमरा-प्रभार' प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 400 रुपये या उससे अधिक है। कर का उद्ग्रहण होटल के ऐसे वर्ग तक सीमित रखा गया है जो उस कानूनी मानक को पूरा करते हैं। किंतु जहां निवास की जगह और खाद्य दोनों की बाबत संयुक्त प्रभार संदेय हैं तो अधिनियम को लागू करने की कसौटी के अवधारण के प्रयोजनार्थ 'कमरा प्रभारों' को विहित रीति में प्रभाजित करना होगा। धारा 3 निर्धारण अधिकारी को ऐसे युक्तियुक्त आधार पर 'कमरा-प्रभार' अवधारित करने के लिए समर्थ बनाती है जैसा वह ठीक समझे जहां—

"(i) निवास की जगह, खाद्य, पेय और अन्य सेवाओं या उनमें से किसी की बाबत संयुक्त प्रभार संदेय हैं और वह मामला उपधारा (2) के उपबंधों के अंतर्गत नहीं आता है, या

(ii) आय-कर अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि निवास की जगह, खाद्य, पेय या अन्य सेवाओं के लिए प्रभारों को ऐसे विन्यस्त किया गया है कि कमरा-प्रभार कम करके बतलाया जाता है और अन्य प्रभारों को बढ़ाकर बतलाया जाता है।"

धारा 6 और 24 अधिनियम को लागू करने के लिए प्रकल्पना करती हैं और प्राधिकारियों का उपबंध करती हैं तथा आय-कर अधिनियम के तंत्र और प्रक्रिया को इसमें लागू बनाती हैं। धारा 6 (1) में यह उपबंध है—

"प्रत्येक निरीक्षण निदेशक, आय-कर आयुक्त, आय-कर आयुक्त (अपील), आय-कर सहायक आयुक्त (निरीक्षण), आय-कर अधिकारी और आय-कर निरीक्षक को इस अधिनियम के अधीन वैसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वह वैसे ही कर्तव्यों का पालन करेगा जो उसे आय-कर अधिनियम के अधीन प्राप्त हैं और जिनका वह पालन करता है, तथा उसकी शक्तियों के प्रयोग और उसके कृत्यों के पालन के लिए इस अधिनियम के अधीन उसकी अधिकारिता वही होगी जो आय-कर अधिनियम के अधीन है।"

धारा 24 में यह उपबंध है—

"आय-कर अधिनियम की निम्नलिखित धाराओं तथा अनुसूचियों के उपबंध और समय-समय पर यथा प्रवृत्त आय-कर (प्रमाणपत्र कार्यवाही) नियम, 1962 आवश्यक उपांतरों सहित उसी प्रकार लागू होंगे मानो उक्त उपबंध तथा नियम आय-कर के स्थान पर व्यय-कर के प्रति निर्देश करते हों—

2 (43ख) और (44), 118, 125, 125-क, 128 से 135 तक (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 138, 140, 144-क, 159 से 163 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 166, 167, 170, 171, 173 से 179 तक (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 187, 188, 189, 220 से 227 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 229, 231, 232, 237 से 245 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 254 से 262 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं), 265, 266, 268, 269, 278-ख, 278-ग, 278-घ, 281, 281-ख, 282, 283, 284, 287, 288, 288-क, 288-ख, 289 से 293 (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं) द्वितीय अनुसूची और तृतीय अनुसूची :

परंतु उक्त उपबंधों और नियमों में 'निर्धारिती' के प्रति निर्देश का अर्थ इस अधिनियम में यथा परिभाषित निर्धारिती के प्रति निर्देश समझा जाएगा।"

धारा 8 (1) में यह उपबंध है कि धारा 2 (8) में यथा परिभाषित कर संग्रह करने के लिए उत्तरदायी प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वर्ष मार्च के 31वें दिन से चार मास की समाप्ति से पूर्व आय-कर अधिकारी को ठीक पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष की बाबत एक विवरणी, जो विहित प्ररूप में और विहित रीति में सत्यापित होगी, प्रस्तुत करेगा या कराएगा, जिसमें निम्नलिखित दर्शाया जाएगा—(क) प्रभार्य व्यय की बाबत प्राप्त कुल संदाय; (ख) संगृहीत कर की रकम; (ग) केंद्रीय सरकार के जमाखाते संदत्त कर की रकम; और (घ) ऐसी अन्य विशिष्टियां जो विहित की जाएं।

कर का भार उन व्यक्तियों पर है जो उन होटलों के उस वर्ग में जिसे अधिनियम लागू होता है 'प्रभार्य-व्यय' उपगत करते हैं। धारा 7 शुल्क का 'संग्रह करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति' के लिए यह व्यादेश करती है कि वह करों का संग्रहण करे और उसे केंद्रीय सरकार के खाते में संदत्त करे। धारा 3 में अनुबंधित प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 400 रुपये का 'कमरा प्रभार' वह अंतर (प्रभेद) है जो होटलों के उस वर्ग को पृथक् करता है जिसे अधिनियम लागू होता है। याचियों का पक्षकथन यह है कि धारा 3 मात्र रूप से उस स्थान अर्थात् होटल को परिभाषित करती है जिसमें कमरे का प्रभार 400 रुपये प्रतिदिन नियत किया गया है और अधिनियम के उपबंधों का शेष भाग और परिणाम ऐसे स्थान में 'विलास वस्तुओं' की व्यवस्था करने पर कर के उद्ग्रहण की प्रकल्पना करते हैं। यह दलील दी गई है कि विधान पूरी तरह से सूची 2 की प्रविष्टि 62 के अंतर्गत होने के कारण राज्य की शक्ति के भीतर है। यह दलील दी गई कि अधिनियम 'व्यय कर' अधिरोपित नहीं करता बल्कि 'विलास वस्तुओं' पर कर लगाता है। यह कहा गया है कि यदि विधान का उद्देश्य 'व्यय को कम करना' है और यह निरुत्साहन, आडंबरपूर्ण और खर्चीले व्यय द्वारा वर्गीकरण

को निषिद्ध करना चाहता है तो इसका कोई तर्कपूर्ण आधार नहीं है। वैसी ही स्थिति वाले व्यक्ति और जो उसी सीमा और डिग्री तक वैसी ही विलास वस्तुओं पर व्यय उपगत करते हैं उनके साथ एकमात्र इस आधार पर प्रभेद किया जाता है कि एक दशा में व्यय ऐसे होटल में उपगत किया जाता है जिसमें एक कमरे का प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति प्रभार 400 रुपये नियत किया गया है जबकि दूसरे में यद्यपि समान रूप में खर्चीला व्यय और भी अधिक विलासमय रेस्तरां में उपगत किया जाता है वहां पश्चात्कथित व्यय को छूट प्राप्त है। यह दलील दी गई कि धारा 5 के खंड (क) से लेकर (घ) तक में प्रकल्पित और भी अधिक बढ़िया और कीमती खाद्य और पेय और अन्य सेवाएं होटल अथवा ऐसे खानपान स्थापन में दी जाती हैं जो उस वर्ग से बाहर हैं तो उस पर उपगत व्यय विधि द्वारा अप्रभावित है। कम करके सम्मिलित करने के इस पहलू पर इस रूप में आपत्ति की गई है कि इससे अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है।

5. याचियों ने इसके आगे यह दलील दी कि अधिनियम के बहुत से उपबंध जो दुर्भर प्रकृति की कतिपय कानूनी बाध्यताएं अधिरोपित करते हैं, जिनके भाग के लिए दंड की व्यवस्था है, विधि को अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन याचियों के मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बंधन बना देते हैं।

याचिकाओं के समर्थन में जो दलीलें दी गई हैं उन पर ध्यान देना उचित होगा और उन्हें निम्नलिखित रूप में उल्लिखित किया गया है—

(क) 'अधिनियम' उसके सही प्रकृति और स्वरूप में ऐसा नहीं है जो विधि में, लोक वित्त के और विधायी परिपाटी के सिद्धांतों में स्वीकृत यथा ज्ञात 'व्यय कर' अधिरोपित नहीं करता है बल्कि सारतः और तत्वतः यह या तो 7वीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 62 के अंतर्गत आने वाली विलास वस्तुओं पर कर है अथवा दूसरी सूची की प्रविष्टि 54 में प्रकल्पित प्रकृति की लाग गठित करने वाले माल के क्रय के लिए संदत्त प्रतिफल पर कर है और यह स्पष्ट रूप से संघ संसद् की विधायी क्षमता से बाहर है;

(ख) यह कि यदि 'अधिनियम' के बारे में यह माना जाए कि यह ऐसा 'अद्वितीय' (विशिष्ट) अथवा 'अज्ञात उद्भव' वाला कर अधिरोपित करता है जिसकी बाबत संघ संसद् अनुच्छेद 248 के अधीन और सूची I की प्रविष्टि 97 के अधीन विधि बनाने के लिए सक्षम है तो हर हालत में 'अधिनियम' अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करता है क्योंकि वह अंतर जिसके आधार पर होटलों का वर्गीकरण किया गया है मनमाना और अबोधगम्य है जिसका 'अधिनियम' के अधीन कराधान नीति के साथ कोई तर्कपूर्ण संबंध नहीं है।

(ग) यह कि 'अधिनियम' अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन याचियों के मूल अधिकार का अतिक्रमण करता है क्योंकि यह उनके कारबार की स्वतंत्रता पर अयुक्तियुक्त दुर्भर निर्बंधन अधिरोपित करता है।

6. **दलील (क) के बारे में—**

याचियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल, श्री पालखीवाला ने यह दलील दी है कि लाग

को 'व्यय कर' का जो अभिधान दिया गया है वह गलत नाम है क्योंकि विधि में यथाविदित तथा लोक वित्त के सिद्धांतवादियों (आचार्यों) द्वारा मान्य 'व्यय कर' की संकल्पना व्यय की कुछ छुटपुट मदों पर कर नहीं है बल्कि यह कला का एक पद है जिसने विधिक नाम के रूप में तकनीकी अर्थ अर्जित कर लिया है और यह कि अधिनियम द्वारा प्रकल्पित अर्थ उसकी सही प्रकृति और स्वरूप में, न तो उससे अधिक और न उससे कम, सूची II की प्रविष्टि 62 के अधीन विलास वस्तुओं पर एक कर है जो राज्य की अनन्य शक्ति के भीतर है। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि परिसंघीय राज्यतंत्र में संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का सीमांकन ऐसा नाजुक संतुलन है जो संघ, जो कि अवशिष्ट शक्तियों का निधान है, पर सीमांकन को और साथ ही सांविधानिक आज्ञा को स्वीकार करने का संवेदनशील कार्य सौंपता है और इसे इसका अतिक्रमण न करने की अनुशासित अनिच्छा भी। विधायी क्षमता के अभाव के बारे में दलील दो पहलुओं पर जोर देती है—जिसमें एक की नकारात्मक विवक्षा है और दूसरे का सकारात्मक अर्थ है। नकारात्मक रूप में यह दलील दी गई है कि लाग 'व्यय कर' नहीं है और वह उस संकल्पना को पूरा नहीं करती जिसका विधि और लोक वित्त दोनों में ही तकनीकी अर्थ है। यह दलील दी गई कि व्यय की कतिपय छुटपुट मदों पर कर सामान्यतया 'व्यय कर' नहीं है। उद्ग्रहण की नामपद्धति सूची I की प्रविष्टि 62 के अधीन वास्तव में जो कर है उसके लिए एक ऐसा विधिक मुखौटा है जो उस पर ठीक नहीं बैठता। यह दलील दी गई की कर कि नामपद्धति उसकी सही प्रकृति और स्वरूप विनिश्चित करने में असुसंगत है। विद्वान् काउंसेल ने यह कहा कि यह विषय की प्रारंभिक अवस्था से संबद्ध है, यह कि शक्ति की सांविधानिक गारंटी उस शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियमित विधायन को अपना कर अपना विस्तार नहीं कर सकती, एक नाम जो अनुदान का तत्समान है और अर्थ विज्ञान की दृष्टि से उसी में शामिल है। श्री पालखीवाला ने यह दलील दी कि लोक वित्त के सिद्धांतों में यथा ज्ञात 'व्यय कर' की संकल्पना की सही प्रकृति का विनिर्दिष्ट सर्वस्वीकृत विधिक अर्थ है और यह आय अथवा 'बचाई गई' पूंजी से अभिन्न रूप में खर्च अथवा उपभुक्त आय अथवा पूंजी पर उद्गृहीत कर है। वित्तीय साध्यम के रूप में 'व्यय कर' की इस संकल्पना के इसकी नीति को अनुप्रमाणित करने वाले कतिपय सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य हैं। यह दलील दी गई कि प्रस्तुत लाग और इसके भारों का लोक वित्त के सिद्धांतों को ज्ञात और उनके द्वारा स्वीकृत तथा ख्यात विधायी परिपाटी द्वारा मान्य 'व्यय कर' की संकल्पना से कोई तर्कपूर्ण संबंध नहीं है।

7. अर्थशास्त्रियों की 'व्यय कर' की संकल्पना के प्रति निर्देश करते हुए विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान (भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, अप्रैल, 1987) के अध्ययन दल की 'व्यय पर कराधान' (आन टैक्सेशन आफ एक्सपेंडीचर) की रिपोर्ट की ओर दिलाया है—

> "सामान्यतया व्यय कर से अभिप्रेत है व्यक्तिगत उपभोग पर प्रत्यक्ष कर अर्थात् किसी करदाता, व्यक्ति अथवा कुटुंब का कुल वार्षिक उपभोग (जिसमें छूट यदि कोई हो, कम कर दी जाएगी) इसमें यह विवक्षित है कि कर उस वर्ष में सदेय होगा जिसमें उपभोग हुआ है। ऐसे कर की बात सोची जा सकती है जिसमें व्यय की सभी मदों को जोड़ते हुए संगणना की जाए जिन्हें विधि द्वारा उपभोग व्यय के

रूप में परिभाषित किया गया है,.......................................

..........अथवा आनुकल्पिक रूप से, सभी प्राप्तियों को जोड़ते हुए और उनमें से आय अर्जित करने के व्ययों को और साथ ही बचत के रूप में की जाने वाली राशियों को कम किया जाएगा (जो कि विनिधानों के विभिन्न रूपों में जाते हैं जिसमें विगत उधारों का प्रतिसंदाय सम्मिलित है)। व्यवहार में पश्चात्कथित पद्धति अधिमान योग्य है।"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया है)

"श्रीलंका सहित भारत को उपभोग व्यय पर प्रत्यक्ष कर का वास्तविक प्रयोग करने की विशिष्टता प्राप्त है यद्यपि विकसित देशों के बहुत से कर सिद्धांतवादियों ने इस बात की कल्पना की थी जिनमें से कुछ ने इसको कार्यान्वित करने के लिए व्यावहारिक प्रणालियां विकसित की थीं। भारत ओर श्रीलंका दोनों ही देशों में कर प्रोफैसर निकोलस कालडर की सिफारिशों के आधार पर शुरू किया गया था। प्रोफैसर कालडर को भारतीय सांख्यिकी संस्थान ने दूसरी पंचवर्षीय योजना की राजस्व आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय कर प्रणाली के बारे में शोध करने के लिए आने का निमंत्रण दिया था। अपनी रिपोर्ट में उसने व्यापक और स्वनियंत्रित प्रणाली के भाग स्वरूप जिसमें आय कर सम्मिलित था (जो कि भारत में पहले से ही प्रवर्तित था) व्यक्तिगत उपभोग व्यय के आधार पर प्रत्यक्ष कर शुरू करने की सिफारिश की थी जो कि पूंजी अभिलाभों पर कर (जिसे युद्धोत्तर काल में दो वर्ष के लिए शुरू किया गया था और बाद में हटा लिया गया था), कुल संपत्ति पर वार्षिक कर सामान्य उपहार कर और व्यक्तिगत व्यय पर कर। उसने यह प्रकल्पना की कि इन पांच उद्ग्रहणों का एकल व्यापक विवरणी के आधार पर साथ-साथ निर्धारण किया जाएगा ......"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया है)

"प्रोफैसर कालडर ने व्यय कराधान की जिस स्कीम का सुझाव दिया है उसके अधीन करदाता को उपभोग की बाबत अपनी लागत का विस्तृत लेखा देने की आवश्यकता नहीं है बल्कि व्यापक कर विवरणी के भाग स्वरूप अपनी कुल लागत का एक कथन देना होगा जिसमें उसकी सभी प्राप्तियां विनिधान आदि और वे सभी मदें दर्शित होंगी जिनके लिए उसने छूट का दावा किया है ......"

"यद्यपि भारत में भी व्यय कर का दो बार प्रयोग किया गया किंतु उसे छोड़ दिया गया अतः व्यक्तिगत कराधान के लिए आधार के रूप में व्यय को आधार बनाने के लिए पुनः रुचि जागृत हुई है। विशेष रूप से यह कहा गया है कि भारत को तीन महत्वपूर्ण कारणोंवश वर्धमान व्यय कर की ओर कदम बढ़ाने पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए :

(क) इससे बचतों को बढ़ावा मिलेगा;

(ख) मोटे तौर पर यह वर्तमान अथवा आय-कर के किसी भी व्यवहार्य ढंग से अधिक साम्योचित होगा; और

(ग) यह प्रत्यक्ष कर अपवंचन के प्रलोभन को पर्याप्त रूप से कम कर देगा।"

मसग्रेव कृत 'पब्लिक फाइनेंस' में व्यक्तिगत व्यय कर की संकल्पना के प्रति निर्देश करते हुए यह कहा गया है—

"......आय कर के सदृश करदाता वर्ष भर के लिए अपना कुल उपभोग अवधारित करेगा उसमें से वे सभी व्यक्तिगत छूट और कटौतियां कम कर देगा जो अनुज्ञात की गई थीं और कराधेय उपभोग की शेष रकम पर वर्धमान दर अनुसूची लागू करेगा।"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया है)

श्री पालखीवाला ने भी 'आन एक्सपेंडीचर टैक्स' में निकोलस कालडर के कतिपय अवतरणों को निर्दिष्ट किया है और उसी प्रख्यात अर्थशास्त्री की 'इंडियन टैक्स रिफार्म' पर रिपोर्ट को भी इस निवेदन की पुष्टि करने के लिए निर्दिष्ट किया है कि आर्थिक विनियमन के लिए वित्तीय माध्यम के तौर पर 'व्यय-कर' की संकल्पना का विनिर्दिष्ट और निश्चित अर्थ है और लोक वित्त विषयक विशेषज्ञों द्वारा संकल्पित ऐसा 'कर' उस भाग से बिल्कुल पूर्णतः भिन्न है जो प्रस्तुत विधान में रखा गया है। यह निवेदन किया गया है कि आक्षेपित विधान में परिकल्पित 'व्यय-कर' की संकल्पना लोक वित्त के स्वीकृत सिद्धांतों के लिए अनजानी है और वह विधि और विधायी व्यवहार (परिपाटी) में जिसे 'व्यय-कर' के रूप में अंगीकार किया गया है उसकी आवश्यक प्रकृति और प्रसंगतियों के बारे में गंभीर भ्रांत धारणा का परिणाम है। विद्वान् काउंसेल ने यह कहा कि यह संपूर्ण कार्य प्रत्येयता पर भरोसा है और यह कि विधेयक के बारे में वित्त मंत्री के भाषण से इस बाबत कोई संदेह नहीं रह जाता कि सरकार विधि से जो कुछ चाहती थी वह वास्तव में 'विलास वस्तुओं' पर कर था। यह निवेदन किया गया कि लाग का कोई अन्य विधिसंमत् अर्थ नहीं लगाया जा सकता और सिवाय इसके कि सारतः और तत्वतः यह 'विलास वस्तुओं' पर कर है जो राज्य की शक्ति के भीतर है। श्री पालखीवाला ने **आजम झा बहादुर बनाम व्यय कर अधिकारी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों में जो कुछ विवक्षित था उस पर जोर दिया जो मताभिव्यक्ति व्यय कर अधिनियम, 1957 को अधिनियमित करने के लिए संघ संसद की विधायी क्षमता को कायम रखते हुए की गई थी जो (अधिनियम) सूची I की अवशिष्ट प्रविष्टि 97 के बारे में है। विद्वान् काउंसेल के अनुसार रिपोर्ट के पृ० 479 पर इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों की विवक्षा यह है कि सूची II की प्रविष्टि 62 के अधीन 'व्यय-कर' को उद्ग्रहण से जो प्रभेदित करती है यह है कि कराधान की सीमा में समय की ईकाई में होने वाले व्यय की समग्रता को उन राशियों से भिन्न रूप में ध्यान में रखा गया है जो विलास वस्तुओं पर छुट पुट क्रय के लिए रखी जाती हैं।

[1] 1977 (1) एस० सी० आर० 470.

1989(5) eILR(PAT) SC 107

8. इसके पश्चात् श्री पालखीवाला ने यह दलील दी कि विधायी व्यवहार में यथाज्ञात व्यय कर की धारणा एक सुसंगत तथ्य है। **क्राफ्ट** बनाम **डनफी**[1] वाले मामले में लार्ड मैकमिलन ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब किसी विशेष विषय के बारे में विधान-मंडल को कोई शक्ति प्रदत्त की जाती है तो शक्ति के प्रविषय का अवधारण करने में इस बात का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उस शक्ति को विधायी परिपाटी में मामूली तौर पर किस विषय के भीतर समझा जाता है और विशेष रूप से उस राज्य की विधायी परिपाटी में जिसने शक्ति प्रदत्त की है। **वॅलेस ब्रदर्स एंड कं० लि०** बनाम **आय-कर आयुक्त, मंबई शहर**[2] वाले मामले में लार्ड उथवाट्ट ने अनुज्ञेयता को निर्दिष्ट किया और वास्तव में उस विधायी परिपाटी के महत्व के बारे में निर्दिष्ट किया जो कि विधायी शक्ति के प्रविष्य को समझने में विधायन के विषय के भीतर मामूली तौर पर क्या समझा जाता है। यह निवेदन किया गया कि व्यय कर अधिनियम, 1957 की स्कीम में व्यय कर की धारणा ऐसी विधायी परिपाटी को प्रभावित करेगी।

9. तर्क का दूसरा भाग यह है कि लाग स्पष्टतः ऐसी प्रकृति की है जो सूची I की प्रविष्टि 62 के भीतर विलास वस्तुओं पर कर है। इस तर्क के अनुसार सरल कसौटी यह है कि क्या यदि किसी विधानमंडल ने वैसी ही विधि अधिनियमित की होती तो इसे सूची II की प्रविष्टि 62 के अधीन इसकी सक्षमता के भीतर न माना जाता इस निवेदन के अनुसार इसका उत्तर स्पष्टतः नकारात्मक होगा। विलास कर की संकल्पना के प्रति निर्देश करते हुए विद्वान् काउंसेल ने न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका जिल्द 7 के प्रति निर्देश किया जिसमें लक्जरी टैक्स' (विलास कर) के बारे में यह कहा गया है—

> "विलास कर आवश्यकता की अपेक्षा विलास वस्तुएं समझे जाने वाले माल और सेवाओं पर उदग्रहण लगाता है। इसके आधुनिक उदाहरण आभूषणों और इत्र पर कर हैं। विलास कर समृद्ध व्यक्तियों पर कर लगाने के आशय से उद्गृहीत किए जा सकते हैं जैसा कि 18वीं शताब्दी के अंत में और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में गाड़ियों (कैरेजिज) और पुरुष सेवकों पर ब्रिटिश कर लगाए गए थे; अथवा उन्हें उपभोग पद्धति को प्रवर्तित करने के लिए विमर्शित प्रयास के रूप में अधिरोपित किया जा सकता है चाहे वह नैतिक कारणोंवश हो अथवा किसी राष्ट्रीय आपात के कारण। आधुनिक समय में विलास करों से होने वाले राजस्व लाभ के नैतिक तर्क का बहुत अधिक महत्व हो गया है। इसके अतिरिक्त पहले के करों की आनुक्रमिक प्रकृति उस समय समाप्त होनी शुरू हो गई जब बहुत कम आय वाले व्यक्तियों की 'विलास वस्तुओं पर अतिरिक्त राजस्व जुटाने के हित में कर लगाया जाने लगा, मनोरंजन कर इसका उदाहरण है।"

सूची I की प्रविष्टि 86 द्वारा प्रकल्पित धन-कर के सादृश्य के आधार पर यह दलील दी गई कि यहां तक कि 'धन' पर कर अधिरोपित करने के लिए धन की संकल्पना निर्धारिती की आस्तियों के अलग-अलग घटक नहीं हैं बल्कि निर्धारिती के स्वामित्व में सभी आस्तियां

---

[1] 1933 ए० सी० 156

[2] 1948 एल० आर० 75.

समग्र रूप से ध्यान में रखी जाती हैं उसी प्रकार 'व्यय' की संकल्पना है जिसमें व्यय की कुछ छुटपुट मदें नहीं होतीं बल्कि किसी समय की विशेष इकाई के लिए और के दौरान व्यय की व्यवस्थित संगणना है।

10. इसके पश्चात् यह दलील दी गई कि सूची I की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अधीन अवशिष्ट शक्ति का अवलंब केवल अंत में लिया जाना चाहिए और यह तभी और केवल तभी उपलभ्य होगा जब राज्य और समवर्ती सूचियों में की अन्य प्रविष्टियों में वह विषय नहीं आता है।

सुब्रामण्यम् चेट्टियार बनाम **मुत्तस्वामी गोंडन**[1] वाले मामले में फैडरल न्यायालय की मताभिव्यक्तियों का अवलंब लिया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था—

> "किंतु अवशिष्ट शक्ति का अवलंब सबसे अंत में लिया जाना चाहिए। केवल तभी जब तीनों सूचियों के सभी प्रवर्गों को बिल्कुल निश्शेषित कर दिया जाए तभी उसका सहारा लिया जा सकता है जिसका उनमें कहीं उल्लेख नहीं है।"

श्री पालखीवाला ने **इंटरनेशनल टूरिस्ट कारपोरेशन** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामले में न्या० चिन्नप्पा रेड्डी ने जिन निम्नलिखित शब्दों में सतर्क किया था उनको याद दिलाया—

> "……इससे पूर्व कि अवशिष्ट शक्ति की सहायता लेकर संसद् के लिए अनन्य विधायी क्षमता का दावा किया जा सके, राज्य विधानमंडल की विधायी क्षमता स्पष्ट रूप से सिद्ध की जानी चाहिए। प्रविष्टि 97 में स्वयं विनिर्दिष्ट है कि कोई मामला उस प्रविष्टि के अधीन केवल तभी लाया जा सकता है जब वह सूची II या सूची III के अधीन प्रगणित न हो और किसी कर के मामले में उन सूचियों में से किसी में भी यदि उसका उल्लेख न किया गया हो। किसी परिसंघीय संविधान में जैसा कि हमारा है, जिसमें विधायी विषयों का विभाजन होता है किंतु अवशिष्ट शक्ति संसद् में निहित होती है, ऐसी अवशिष्ट शक्ति का निर्वचन इतने विस्तृत रूप से नहीं किया जा सकता कि वह राज्य विधानमंडल की शक्ति को कम कर दे। इससे परिसंघीय सिद्धांत पर भी प्रभाव पड़ सकता है और उसे हानि पहुंच सकती है। संविधान का परिसंघीय स्वरूप इस बात की मांग करता है कि कोई ऐसा निर्वचन जो संसद् द्वारा उसमें निहित समवर्ती शक्तियों के अनुसरण में विधायी शक्ति के प्रयोग के लिए राज्य विधान में दखल-अंदाजी करने की इजाजत दे और जो तद्द्वारा राज्य की स्वायत्तता को नष्टकर दे या उसे कम कर दे, अस्वीकार कर देना चाहिए……।"

श्री पालखीवाला ने यह निर्दशित करने की ईप्सा की कि यदि एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए तो उद्ग्रहण एक संव्यवहार को विभक्त करके एक विचित्र स्थिति प्रस्तुत कर

---

[1] ए० आई० आर० 1941 एफ० सी० 47.

[2] 1981 (2) एस० सी० आर० 364.

देता है जो कि अन्यथा माल का विक्रय हुआ होता और व्यय कर के उद्ग्रहण के लिए माल की कीमत को पृथक् रूप से एक भिन्न विषय-वस्तु समझा जाता है। इस प्रकार राज्य से उसकी शक्ति सारतः छीन ली गई है।

केरल राज्य के विद्वान् महाधिवक्ता ने जिन्होंने मध्यक्षेप किया, ऐसी दलीलें दीं जो कि सारतः याचियों की दलीलों जैसी ही थीं तो भी उन्होंने यह शर्त रखी कि संघ राज्यक्षेत्रों में 'अधिनियम' के प्रवर्तन की सीमा तक विधायी क्षमता का समर्थन किया जा सकता है।

11. इसके प्रतिकूल विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील दी कि विधि सारतः और तत्वतः सूची I की प्रविष्टि 62 के अधीन 'विलास वस्तुओं' की बाबत नहीं है और व्यय पर कर, जैसा कि विधानमंडल ने इसे समझा है, अवशिष्ट शक्ति से संबंध रखता है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह कहा कि अधिक से अधिक ऐसे व्यय कर की अर्थशास्त्री की संकल्पना वित्तीय कार्यक्रमों को प्रभावी करने की रीति का एक भाव है और वह विधायी शक्ति पर काई निर्बंधन नहीं है। वास्तव में यदि किसी विषय को सूची II अथवा III में विधान के क्षेत्र के भीतर आने वाला दर्शित नहीं किया जाता है तो उस विषय पर विधान बनाने की संघ की विधायी क्षमता का समर्थन करने के लिए कोई और जांच करने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि **भारत संघ बनाम एच० एस० ढिल्लों**[1] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है संघ के लिए एक पृथक् सूची समाविष्ट करने का प्रयोजन यह है—

> "......सूची I में विनिर्दिष्ट मदों को शामिल करने में कुछ गुणवत्ता और विधिक प्रभाव है क्योंकि जब संविधान में तीन सूचियां हैं तब सूची II का सूची I और III के प्रकाश में अर्थान्वियन करना आसान है। यदि सूची I न होती तो संभवतः प्रस्तुत स्कीम के अधीन किए जा सकने वाले निर्वचन की अपेक्षा सूची II की बहुत सी मदों का अधिक व्यापक रूप से निर्वचन किया गया होता। जो भी हो, हमारे सामने तीन सूचियां हैं और एक अवशिष्ट शक्ति है और इसलिए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस संदर्भ में यदि किसी केंद्रीय अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है तो यह जांच करना पर्याप्त है कि क्या वह सूची II में प्रगणित विषयों या करों के संबंध में विधि है। यदि वह नहीं है तो आगे कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया है)

विद्वान् महान्यायवादी ने याचियों की दलील को यह स्वरूप दिया कि आक्षेपित लाग वास्तव में विलास वस्तुओं पर कर है अथवा यह कि माल के विक्रय में कराधेय घटना का एक पक्ष अननुज्ञेय रूप से 'व्यय' के कृत्रिम भाव का सृजन करने के लिए अलग कर लिया गया था, इसमें कतिपय आधारभूत भ्रांतियां हैं। यह दलील दी गई कि विधायी शक्तियां उसी विषय के भिन्न पहलुओं के विभाजन को विधान के भिन्न विषयों के रूप में

[1] 1972 (2) एस० सी० आर० 33, पृ० 67.

स्वीकार करती हैं और यह कि विधायी सक्षमता को दी गई यह चुनौती विधान के सुभिन्न क्षेत्र गठित करने वाले उसी विषय के सुभिन्न पहलुओं का दो में विभाजन की उपेक्षा करती है, यद्यपि विभाजन की रेखा कभी बहुत क्षीण और सूक्ष्म हो सकती है किंतु यह वास्तविक होती है। इसके आगे विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील दी कि कर के उद्ग्रहण के लिए अपनाया गया अध्युपाय आवश्यक रूप से इसके अनिवार्य स्वरूप का अवधारण नहीं करता और वह उद्देश्य जिस पर व्यय किया जाता है विलास वस्तुओं की एक मद हो सकता है और यह ऐसी एक मद नहीं भी हो सकता अथवा 'व्यय' माल की कीमत गठित कर सकता है किंतु जिस पर कर लगाया जाता है वह 'व्यय' पक्ष है जिसे स्वयं विधान के सुभिन्न विषय के रूप में माना जा सकता है।

12. हमने इन विरोधी दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित विधि द्वारा परिकल्पित कर संघ संसद् की विधायी शक्ति के भीतर है। उस भाव में विधि की सांविधानिकता अनिवार्य रूप से ऐसी शक्ति का प्रश्न बन जाती है जो ब्रिटिश संसद् जैसे विधिक रूप से सर्वशक्तिसंपन्न विधानमंडल के विपरीत परिसंघीय संविधान में विधायी सूचियों में की प्रविष्टि के अर्थान्वयन पर निर्भर करता है। यदि सीमित अधिकारिता वाला विधानमंडल अपनी शक्तियों का अतिक्रमण करता है तो ऐसा अतिक्रमण खुला, प्रत्यक्ष और सीधा हो सकता है अथवा किसी दूसरे रूप में प्रच्छन्न, अप्रत्यक्ष अथवा गुप्त हो सकता है। पश्चात्कथित अतिक्रमण को अलंकारिक रूप में 'आभासी विधान' कहा गया है जिससे अभिप्रेत है कि यद्यपि प्रकट रूप से विधानमंडल का तात्पर्य अपनी शक्तियों की सीमाओं के भीतर कार्य करना है तो भी सारतः और वास्तव में यह प्रतिषिद्ध क्षेत्र पर अतिक्रमण कर जाता है जिसके लिए यह अवधारण करने के प्रयोजनार्थ कि विधान का सार क्या है कठोरतापूर्वक यह परीक्षा करने की आवश्यकता है कि विधान-मंडल वास्तव में क्या कर रहा है। जहां कहीं विधायी शक्तियां संघ और राज्यों के बीच विभाजित की जाती हैं वहां ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें दो विधायी क्षेत्र प्रकट रूप से एक दूसरे को अतिव्याप्त कर जाएं। न्यायालयों का यह कर्तव्य है, चाहे वह कितना ही कठिन हो, कि वह यह विनिश्चित करें कि किस डिग्री और किस विस्तार तक हर एक विधानमंडल को इन विषयों के वर्गों के भीतर आने वाले विषयों के बारे में प्राधिकार प्राप्त है और यह अपने समक्ष वाले मामले में उनकी क्रमिक शक्तियों की परिसीमाएं परिनिश्चित करें। यह आशय नहीं हो सकता था कि कोई विरोध रहे और ऐसे परिणाम को निवारित करने के लिए दोनों उपबंधों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और एक की भाषा का निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए कि जहां आवश्यक हो वहां दूसरे की भाषा से उसे उपांतरित किया जा सके।

प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी और अन्य बनाम **बैंक आफ कामर्स**[1] वाले मामले में जुडिशियल कमेटी ने **सुब्रामण्यम् चेट्टियार**[2] वाले मामले में मु० न्या० सर मौरिस गायर की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को सानुमोदन निर्दिष्ट किया है—

"अपरिहार्य रूप से समय-समय पर यह होता है कि विधान, यद्यपि तात्पर्यित

[1] 1945 एफ० सी० आर० 179.

[2] ए० आई० आर० 1941 एफ० सी० 47.

रूप से एक सूची में आने वाले विषय के बारे में है तो भी यह अन्य सूची में आने वाले विषय के बारे में भी है और अधिनियमिति के विभिन्न उपबंध इतने गहनतम रूप से जुड़े हुए हो सकते हैं कि यथार्थ रूप में शाब्दिक निर्वचन के शब्दशः पालन का परिणाम यह हो सकता है कि बहुत से कानून अविधिमान्य घोषित कर दिए जाएं क्योंकि यह प्रतीत हो सकता है कि जिस विधानमंडल ने उन्हें अधिनियमित किया है उसने प्रतिषिद्ध क्षेत्र में विधायन किया है। तो भी जुडीशियल कमेटी ने जो नियम विकसित किया है जिसके द्वारा आक्षेपित कानून की परीक्षा इसका 'सार और तत्व' अथवा इसकी 'सही प्रकृति और स्वरूप' अभिनिश्चित करने के लिए की जाती है जिससे कि यह अवधारित किया जा सके कि क्या यह विधान इस सूची के अथवा उस सूची के विषयों की बाबत है।"

इससे 'परिसंघीय सरकार के अनिवार्य लक्षण के रूप में निष्पक्ष निकाय की भूमिका, जो सामान्य और प्रादेशिक सरकारों से स्वतंत्र हो' की आवश्यकता होती है जिससे कि शक्तियों के विभाजन के अर्थ को विनिश्चित किया जा सके। न्यायालय ऐसा निकाय है।

13. प्रस्तुत मामले में यह स्थिति कुछ भिन्न स्वरूप धारण करती है। याचियों का ऐसा कोई पक्षकथन नहीं है कि 'व्यय-कर' करों में से एक ऐसा कर है जो राज्यों की शक्ति के भीतर आता है अथवा यह कि यह संघ संसद् के लिए प्रतिषिद्ध क्षेत्र है। इसके प्रतिकूल, इस बाबत विवाद नहीं है कि 'व्यय-कर' अधिरोपित करने वाली विधि सूची I की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अधीन सघ संसद् की विधायी शक्ति के भीतर है। किंतु विनिर्दिष्ट दलील यह है कि आक्षेपित विधि के अधीन, इसकी प्रकृति और प्रसंगतियों को ध्यान में रखते हुए, विशेष लाग वास्तव में एक 'व्यय-कर' बिल्कुल नहीं है क्योंकि यह अर्थशास्त्री के ऐसे कर की धारणा के अनुरूप नहीं है। यह तर्क का एक भाग है। दूसरा भाग यह है कि विधि सारतः और तत्वतः वास्तव में विलास वस्तुओं अथवा माल के विक्रय के लिए संदत्त कीमत पर कर अधिरोपित करती है। अतः निश्चायक प्रश्न ये हैं कि क्या ऐसे कर की अर्थशास्त्री की संकल्पना विधायी शक्ति को सीमित करती है और अधिक महत्वपूर्ण रूप से, क्या 'किया गया व्यय' जिसके बारे में यह धारणा की जा सके कि वह 'विलास वस्तुओं' पर अथवा ऐसे माल के क्रय पर किया गया है जिन्हें अलग किया जा सकता है और ऐसे सुभिन्न पहलू के रूप में अभिज्ञात किया जा सकता है जिसे कर-विधान के सुभिन्न क्षेत्र के रूप में अंगीकार किया जा सके।

14. लेफ्रायकृत 'कनाडाज फैडरल सिस्टम' में विद्वान् लेखक ने कनाडा के संविधान अर्थात् ब्रिटिश नार्थ अमेरिका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 और 92 के अधीन 'आस्पैक्ट्स आफ लैजिसलेशन' (विधान के पहलुओं) के प्रति निर्देश करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि 'विधायी शक्ति के विभाजन के संबंध में न्यायिक विनिश्चयों द्वारा जो सर्वाधिक रोचक और महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित हुए हैं वे ये हैं कि ऐसे विषय जिनका एक पहलू और एक प्रयोजन किसी विशेष विधानमंडल की शक्ति के भीतर आता है वह दूसरे पहलू (दृष्टि-कोण) और दूसरे प्रयोजनार्थ अन्य विधायी शक्ति के भीतर आ सकता है।" विद्वान् लेखक ने यह कहा—

"······यह कि 'पहलू' से विधान बनाने में विधायक का पहलू अथवा दृष्टिकोण समझा जाना चाहिए जो कि विधान का उद्देश्य, प्रयोजन और प्रविषय हो यह कि इस शब्द का प्रयोग विधायक के लिए, जिस विषय पर विधान बनाया गया है उसके लिए वस्तुपरक होने की अपेक्षा आत्मपरक रूप में किया गया है।"

यूनियन कोलियरी कंपनी आफ ब्रिटिश कोलम्बिया बनाम **ब्राइडन**[1] वाले मामले में लार्ड हाल्डेन ने यह मत व्यक्त किया—

"यह रीति उल्लेखनीय है जिसमें इस बोर्ड ने इस बात को स्वीकार करते हुए कि ऐसे विषय क्यों एक पहलू (दृष्टिकोण) से धारा 91 के भीतर आते हैं वे दूसरे दृष्टिकोण से धारा 92 के अधीन आ सकते हैं, धारा 91 और धारा 92 के उपबंधों में सामंजस्य किया है।"

वास्तव में किसी विषय 'की बाबत' विधि प्रासंगिक रूप से किसी अन्य विषय को किसी रूप में 'प्रभावित' कर सकती है किंतु यह वही बात नहीं है कि वह विधि पश्चात् कथित विषय पर हो। उसमें अतिव्याप्ति हो सकती है; किंतु वह अतिव्याप्ति विधितः होनी चाहिए। एक ही संव्यवहार में उसके भिन्न पहलुओं में दो या अधिक कराधेय घटना अंतर्वलित हो सकती हैं। किंतु यह तथ्य कि उसमें अतिव्याप्ति है उन पहलुओं की सुभिन्नता में कोई कमी नहीं करता। **गवर्नर जनरल इन कौंसिल** बनाम **प्रोविंस आफ मद्रास**[2] में लार्ड साइमंस ने माल के विक्रय पर उत्पाद-शुल्क और कर की संकल्पनाओं के संदर्भ में यह कहा—

"······दो कर, एक वह जो विनिर्माता पर उसके माल की बाबत उद्गृहीत किया जाता है और दूसरा विक्रेता पर उसके विक्रयों की बाबत उद्गृहीत किया जाता है जैसा कि संकेत किया गया है, एक भाव में एक दूसरे को अतिव्याप्त कर सकते हैं। किंतु विधि में कोई अतिव्याप्ति नहीं होती। यह पृथक् और भिन्न लाग हैं। वास्तव में यदि वे अतिव्याप्त करते हैं तो वह इस कारण हो सकता है कि कराधायक प्राधिकारी, उत्पाद-शुल्क अधिरोपित करते समय उस क्षण शुल्क अधिरोपित करना सुविधाजनक समझता है जब उत्पाद-शुल्क्य वस्तु कारखाने से विक्रय के लिए प्रथम बार चलती है···।"

15. 'पहलू' सिद्धांत के प्रति निर्देश करते हुए लासकिन कृत 'कनेडियन कांस्टीट्यूशनल ला' में यह कहा गया है—

"अभी जिन सिद्धांतों का विवेचन किया गया है 'पहलू' वाले सिद्धांत का उनसे कुछ सादृश्य है किंतु, उनके विपरीत यह इस बारे में नहीं होता कि 'विषय-वस्तु' क्या है बल्कि यह 'किसके भीतर' आती है······।"(पृ० 115)

"······यह वहां लागू होता है जहां ऐसे संघटक तत्व जिनके संयोजन के

---

[1] 1899 ए० सी० 580 पृ० 587

[2] 1945 एफ० सी० आर० 179 (प्रिवी कौंसिल) पृ० 193.

1989(5) eILR(PAT) SC 107

बारे में कानून का सरोकार है (अर्थात् वे इसकी 'विषय-वस्तु' हैं), इस प्रकार के हैं जो बहुधा एक ही वर्ग के विषयों के संबंध में पाए जाते हैं और दूसरे इस प्रकार के हैं जो अधिकतर दूसरे के संबंध के होते हैं, जैसा कि जेबी गैजिट (छोटी मशीन) के बारे में—जो चाकू के फल, पेचकस, मछलीशल्क उतारने वाले (दरांत) नख को चमकाने वाली रेती आदि को सुव्यवस्थित रूप से जोड़ती है, इसके विवरण में हर बात का उल्लेख होना चाहिए किंतु इसका विशिष्ट प्रस्तावित प्रयोग ही इसके स्वरूप को अवधारित करता है।" (पृ० 116)

"......मैं क्रियात्मक असामंजस्य और 'पहलू वाले सिद्धांत के कतिपय सह-संबंधों पर कुछ टिप्पणी करना चाहूंगा। ये दोनों ही ऐसे विवाद्यकों से जूझते हैं जो संमिश्र प्रकृति के कानून से उद्भूत होते हैं, इनसे एक प्रांतीय अध्युपायों पर परि-संघीय विधि के अपवर्जनात्मक प्रभाव के बारे में है जो अध्युपाय परिसंघीय रूप से विनियमित होने वाले आचरण के संघटक हैं जबकि दूसरा उस बात की पहचान है कि वह उस समस्त विषय के भाग को, जिससे वह विषय-वस्तु' बनती है, एक वर्ग के विषयों के भीतर लाता है..."। (पृ० 117)

'गौणता' और 'संयोगवश प्रभावित करने वाले' के बीच क्या भेद है इस बारे में ग्रंथ में यह कहा गया है —

"......इसमें बहुत बड़ा अंतर है यद्यपि इसका कम ही उल्लेख किया जाता है। गौणता को प्रायः ऐसे विवक्षित कानूनी उपबंध से सहबद्ध किया जाता है जिसकी परिधीय प्रकृति होती है; 'संयोग से प्रभावित करने वाली बात' प्रभेद न करने वाले कानून की संभावना के बारे में उठती है जो अविवेकपूर्ण रूप से उन सभी विषयों को लागू होता है जो निश्चयात्मक रूप से नियंत्रण से उन्मुक्त हैं और अन्य विषयों को भी। किंतु यह बात वास्तव में अमहत्वपूर्ण है कि इसके शब्द अथवा इसके कार्यों के परिणामस्वरूप कानून के भीतर सब प्लुतक आ जाता है।" (पृ० 115)

16. कराधान नीति के सूत्रीकरण में अंतर्निहित बिभिन्न आर्थिक तथ्यों के वित्तीय समायोजन की सहज जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए किसी कर को प्रभावी बनाने की रीति की नम्यता और राज्य को उपलभ्य बहुत से नीति विकल्पों के प्रति निर्देश करते हुए न्या० राल्स ने 'माडर्न ट्रैण्ड्स इन एनेलिटिकल एंड नार्मेटिव जूरिसप्रूडेंस' (इंट्रोडक्शन टू जूरिसप्रूडेंस बाई लार्ड लायड आफ हैंपस्टेड एंड फ्रीमैन, 5वां संस्करण) में यह मत व्यक्त किया है—

"......व्यवहार में, प्रायः हमें बहुत-सी अन्यायसंगत और दूसरे नंबर पर सर्वाधिक उपयुक्त व्यवस्थाओं को चुनना होगा अथवा हमें कम से कम अन्यायसंगत स्कीम का पता लगाने के लिए ऐसे सिद्धांत को देखना होगा जो आदर्श न हो। कभी-कभी इस स्कीम में ऐसे अध्युपाय और नीतियां होती हैं जिन्हें पूर्णतः न्यायसंगत व्यवस्था स्वीकार नहीं करती। दो गलतियां मिल कर उस भाव में सही कार्य हो

सकती हैं कि सर्वोत्तम उपलभ्य व्यवस्था में त्रुटियों का संतुलन हो, जिसमें प्रतिपूर्ति करने वाले अन्यायों का समायोजन हो।"

"व्यय-अवमंदन' नीतियों और माल और सेवाओं की सकल मांग को कम करने के लिए परिकल्पित उपायों के विकल्प का उल्लेख करते हुए एलन गिलपिन कृत 'डिक्शनरी आफ इकानोमिक टर्म्स' में यह कहा गया है—

"व्यय-अवमंदन नीतियां—

समुदाय में माल और सेवाओं की सकल मांग को कम करने के लिए परिकल्पित सरकारी अध्युपाय ऐसे अध्युपायों में कर को बढ़ाना (क्यू० बी०) सरकारी व्यय में कमी करना अथवा अवक्रय अथवा अन्य प्रत्यय सुविधाओं को कम करना सम्मिलित है।" (देखें व्यय में बदलाव लाने वाली नीतियां)

व्यय में बदलाव लाने वाली नीतियां

समुदाय द्वारा व्यय के ढंग को प्रभावित करने वाले परिकल्पित सरकारी अध्युपाय उदाहरणस्वरूप आयातित माल पर कर लगाए जाने से आयातित से स्वदेश निर्मित माल पर व्यय में बदलाव आ सकता है। किसी राष्ट्र की मुद्रा के अवमूल्यन का भी वही प्रभाव है। क्योंकि आयात अधिक महंगे हो जाएंगे।" (देखें व्यय-अवमंदन नीतियां)"

विद्वान् महान्यायवादी ने (न्या० ए० के और एम० ए० किंग कृत 'दि ब्रिटिश टैक्स सिस्टम' में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को यह उपदर्शित करने के लिए निर्दिष्ट किया कि व्यय पर लगाए जाने वाला कर आवश्यक रूप से अर्थशास्त्री की गणना के अनुसार व्यय कर नहीं होगा—

"किसी ऐसे वार्षिक व्यय कर में, जो प्रत्येक पृथक् निर्धारण वर्ष में किसी व्यक्ति के व्यय को आंकने की ईप्सा करता है, बहुत-सी गंभीर प्रशासनिक समस्याएं आ जाती हैं क्योंकि ऐसा कर यह अपेक्षित करता है कि उसकी आस्तियों का निर्धारण वार्षिक रूप से किया जाए..."

"......किंतु अधिक सही उत्तर पर पहुंचने के लिए एक और भी आसान तरीका है। हमें यह आंकना होगा कि आपने कितनी विदेशी मुद्रा ली, उसमें वह मुद्रा की रकम जोड़ी जाए जो आपने विदेश में रहते समय खरीदी, और जब आप वापस आए तब उसमें से वह घटा दी जाए जो शेष रही। इस प्रकार स्वयं व्यय नहीं आंका जाता है बल्कि व्यय के स्रोत और इस प्रकार थोड़ी संख्या वाले ऐसे अभिलिखित (और तुरंत सत्यापनीय) संव्यवहारों के आधार पर सरल और विश्वसनीय अध्युपाय प्राप्त किया जा सकता है।"

यह सामान्य है कि विधान की सही प्रकृति और स्वरूप का अवधारण विधानमंडल की शक्ति के प्रश्न के संदर्भ में किया जाना चाहिए। विधान के परिणाम और प्रभाव वही बात नहीं हैं जैसी कि विधायी विषय-वस्तु। यह विधान की सही प्रकृति और स्वरूप है न कि उसका अंतिम आर्थिक परिणाम जो कि महत्वपूर्ण है।

1989(5) eILR(PAT) SC 107

वास्तव में, उसी विषय के भिन्न पहलुओं के उदाहरण के रूप में भिन्न विधायी शक्तियों के अधीन विधान के विषय के बारे में निर्देश किसी व्यक्ति के अपने निवास हेतु अधिभोग में संपत्ति के वार्षिक किराए के मूल्य का एक दृष्टिकोण से निर्देश किया जा सकता है जो राज्य विधि के अधीन संपत्ति कर के उद्ग्रहण का अध्युपाय हो सकता है और दूसरे दृष्टिकोण से आय-कर के काल्पनिक अथवा अनुमानित आय का अन्य पहलू गठित कर सकता है।

17. याचियों ने प्रस्तुत विधान के प्रविषय का अवधारण करने के रूप में विधायी परिपाटी की ओर निर्देश किया है वह उनके लिए सहायक नहीं है। इस दलील में दो कमियां हैं। प्रथम यह कि विधायी परिपाटी का प्रश्न कि किसी विशेष विधायी प्रविष्टि के भीतर क्या विषय आता है उस समय अप्रासंगिक हो जाता है जब ऐसे कर की बाबत विचार किया जा रहा हो जो अपने ही ढंग का (विशिष्ट) अथवा अज्ञात उद्भव वाला है, जिसे अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिरोपित किया जाता है जब तक कि ऐसे कर को सूची II और III में विनिर्दिष्ट रूप से प्रगणित नहीं किया गया है। दूसरे, ऐसी कोई निश्चायक सामग्री नहीं है जो यह इंगित करती हो कि समुचित विधानमंडल ने इस प्रकार के कर के सिद्धांत को किन्हीं सीमाओं में रखा है। **बंलेस ब्रदर्स**[1] वाले मामले में लार्ड उथवाट के शब्दों को स्मरण करना सुसंगत है—

> "निर्देश का मुद्दा विशेष रूप से उस ढंग की ईप्सा करना नहीं है जिसके अनुरूप शक्ति का सम्यक् प्रयोग होना चाहिए। उद्देश्य समर्थकारी अधिनियम में के शब्दों में अंतर्वलित सामान्य संकल्पना को अभिनिश्चित करना है।"

किंतु जैसा कि **नवीनचंद मफतलाल** बनाम **आयकर आयुक्त, मुंबई नगर**[2] वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है। आय-कर अधिनियम में 'आय' शब्द का जो अर्थ दिया गया है वह विधायी सूची में की प्रविष्टि के रूप में उसकी अंतर्वस्तु का अवधारक नहीं है। न्या० दास ने यह मत व्यक्त किया—

> "......अतः यह बात स्पष्ट है कि श्री कोलाह ने जिन नजीरों का अवलंब लिया है उनमें से कोई भी यह सिद्ध नहीं करती कि ऐसी विधायी परिपाटी किसे कहा जा सकता है जो, आय-कर कानून के अलावा, 'आय' पद के अर्थ को इंगित करती हो। हमारी राय में, प्रविष्टि 54 में 'आय' शब्द का, किसी तथाकथित आंग्ल विधायी परिपाटी को ध्यान में रखते हुए, जैसी कि श्री कोलाह ने दलील दी है, निर्वचन करना गलत होगा.........।"(पृष्ठ 835)

18. **भारत संघ** बनाम **एच० एस० ढिल्लों**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने सूची I की प्रविष्टि 97 के अधीन अवशिष्ट शक्ति के प्रविषय के बारे में विचार किया है। **अटर्नी-जनरल फार ओनटेरियो** बनाम **अटर्नी-जनरल फार कनाडा**[4] वाले मामले में लार्ड लोरबर्न के निम्नलिखित मतों को निर्दिष्ट किया गया—

---

[1] (1959) एस० सी० आर० 379 पृ० 4.2

[2] 1955 (1) एस० सी० आर० 829

[3] 1972 (2) एस० सी० आर० 33 पृ० 61

[4] (1972) ए० सी० 571 पृ० 581.

"अब इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस संगठनात्मक लिखत के अधीन एक ओर डोमीनियन और दूसरी ओर प्रांतों के बीच वितरित शक्तियों के अंतर्गत कनाडा के संपूर्ण क्षेत्र के भीतर स्वायत्त शासन का संपूर्ण क्षेत्र आ जाता है। यह धारणा करना कि आंतरिक स्वायत्त शासन की कोई बात कनाडा को नहीं दी गई थी, ऐक्ट की समस्त स्कीम और नीति के लिए हानिकर होगा।"

(रेखांकित भाग पर जोर दिया गया)

उक्त मतों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया कि उपर्युक्त उद्धरण का अंतिम भाग सुतराम प्रभुत्वसंपन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य के संविधान को लागू होता है। इसके आगे मु० न्या० सीकरी ने यह मत व्यक्त किया। (देखें **भारत संघ बनाम एच० एस० ढिल्लों**[1] वाला मामला)—

"......यदि संसद् की अवशिष्ट शक्तियों का यही सही प्रविषय है तब हम यह समझ नहीं पा रहे हैं कि क्यों न हम, जबकि हम केंद्रीय अधिनियम पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, यह जांच करें कि क्या सूची 2 में किसी विषय के संबंध में विधान है क्योंकि केवल यही एक क्षेत्र है जिसके संबंध में संसद् पर प्रतिषेध है। यदि केंद्रीय अधिनियम इन प्रतिषिद्ध क्षेत्रों में प्रवेश नहीं करता या उन पर आक्रमण नहीं करता तो इस बात का विनिश्चय करने का प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सूची I या सूची 3 की किस प्रविष्टि या किन प्रविष्टियों के अंतर्गत कोई केंद्रीय अधिनियम पूर्णतया आएगा।

उसके पश्चात् सूची I की प्रविष्टि 86 के अपवर्जनात्मक शब्दों के बावजूद धन कर अधिनियम के अधीन निर्धारिती के धन में कृषि संपत्ति के मूल्य को सम्मिलित किए जाने योग्य होने पर विचार करते हुए विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने यह कहा—

"......हमारी यह सुनिश्चित राय है, जैसा कि हमने आगे बताया है, कि हमारे संविधान की स्कीम और सुसंगत अनुच्छेदों अर्थात् अनुच्छेद 247, अनुच्छेद 248 और सूची I की प्रविष्टि 97 के वास्तविक निबंधनों से यह दर्शित होता है कि कोई ऐसा विषय, जिसके अंतर्गत कर भी है, जो सूची 2 के अधीन अनन्य रूप से राज्य विधानमंडल को या सूची 3 के अधीन समवर्ती रूप से संसद् को आबंटित नहीं किया गया है, सूची I के अंतर्गत आता है जिसमें अनुच्छेद 248 के साथ पठित उस सूची की प्रविष्टि 97 भी शामिल है।"

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह विषय सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन नहीं आता और यह कि सूची I की प्रविष्टि 86 में अपवर्जन के बावजूद, संघ को, अवशिष्ट शक्ति के निधान के रूप में विधायन की समता थी जब तक ऐसा विषय राज्य को आबंटित न किया जाए अथवा राज्य शक्ति के भीतर न आता हो। इसके आगे यह मत व्यक्त किया गया—

[1] 1972 (2) एस० सी० आर० 33 पृ० 61

"हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा नहीं सोचा जा सकता कि संविधान के निर्माताओं ने भारत को संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाते समय कुछ विषयों या करों के बारे में या तो एकल रूप से या संयुक्त रूप से विधान बनाने की विधायी सक्षमता इस देश के विधानमंडलों को नहीं प्रदान की······"

"हम कोई ऐसा सिद्धांत नहीं जानते हैं जो संसद् की सूची I की विनिर्दिष्ट प्रविष्टि से प्रविष्टि 96 के अधीन शक्तियों का अबलंब लेने से तथा सूची I की प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 के अधीन शक्तियों को और उस प्रयोजन के लिए समवर्ती सूची की प्रविष्टियों के अधीन शक्तियों को अनुपूरित करने के लिए वर्जित करता हो।" (पृष्ठ 74)

19. कर का विषय उद्ग्रहण के अध्युपाय से भिन्न होता है। कर का अध्युपाय इसके आवश्यक स्वरूप अथवा विधानमंडल की सक्षमता का अवधारक नहीं होता। **मेसर्स सैनिक मोटर्स** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन यात्रियों और माल पर कर उद्ग्रहण करने वाली राज्य-विधि के उपबंधों पर इस आधार पर आपत्ति की गई थी कि राज्य, यात्रियों और माल पर कर लगाने के बहाने सारतः और वास्तव में मंजिली गाड़ी के मालिकों की आय पर कर लगा रहा था अथवा हर हालत में वह 'किराए और भाड़े' पर कर लगा रहा था जो दोनों ही उसकी शक्तियों से बाहर हैं। यह संकेत किया गया कि मालिकों से यह अपेक्षित किया गया कि वे किराए और भाड़े के मूल्य से संबंधित दर पर संगणित कर का संदाय करें। दलील को अस्वीकार करते हुए न्या० हिदायतुल्लाह ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया—

"······हम इस बाबत सहमत नहीं हैं कि अधिनियम, सारतः और तत्वतः, आय पर कर लगाता है और यात्रियों और माल पर नहीं। धारा 3 के निबंधनों में 'मोटर यानों द्वारा ले जाए गए सभी यात्रियों और माल की बाबत' कर के प्रभार की बात कही गई है यद्यपि कर का अध्युपाय प्रभारित किराए और भाड़े की रकम के रूप में प्रस्तुत किया गया है तो भी यह यात्रियों और माल पर कर के रूप में समाप्त नहीं हो जाता······"

वास्तव में 'लक्जरी टैक्स' (विलास कर) पर एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (जिल्द 14 पृ० 459) पर निम्नलिखित कथन की ओर निर्देश करना उचित होगा—

"विलास वस्तुओं पर कराधान के प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण, जिसे कम अपनाया जाता है, किसी विशेष उद्देश्य पर खर्च के विलास वस्तु को अलग करने की ईप्सा करता है बजाय विनिर्दिष्ट माल और सेवाओं को विलास वस्तुओं के रूप में कर लगाने के। इसका एक उदाहरण रेस्तरां के एक या अधिक डालर के खाने पर मैस्साच्यूसेट्स का 5 प्रतिशत वाला कर है······"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया)

[1] 1962 (1) एस० सी० आर० 517.

1989(5) eILR(PAT) SC 107

20. हमारी राय में विद्वान् महान्यायवादी की यह दलील स्वीकार की जानी चाहिए कि यह आवश्यक रूप से व्यय पर कर है न कि राज्य की शक्ति के भीतर आने वाली विलास वस्तुओं अथवा माल के विक्रय पर कर है। जैसा कि विद्वान् महान्यायवादी ने दलील दी है इस सुभिन्न पहलू अर्थात् संघ शक्ति के अंतर्गत आने वाले संव्यवहार के 'व्यय' पहलू को प्रभेदित किया जाना चाहिए और उस पर कर अधिरोपित की जाने की विधायी सक्षमता की पुष्टि की जानी चाहिए। हमारी राय में दलील (क) में कोई सार नहीं है और तदनुसार यह असफल होती है।

21. **दलील (ख) के बारे में**—

यह दलील दी गई है कि अधिनियम का लागू होना ऐसे होटलों तक सीमित है जिनमें वास-सुविधा की किसी इकाई के लिए 'कमरा प्रभार' 400 रुपये या उसे अधिक प्रतिदिन प्रति व्यक्ति हो जबकि अन्य होटलों में उपगत अधिक विस्तार और मात्रा वाले व्यय पर कर आहरणीय नहीं है क्योंकि या तो ऐसे कमरा प्रभार 400 रुपये से कम हैं अथवा वह स्थापन जो, यद्यपि धारा 5 द्वारा परिकल्पित खाद्य और पेय एवं अन्य सेवाओं की व्यवस्था करता है उसमें वास-सुविधा की व्यवस्था नहीं करता। यह कहा गया है कि यह सुभिन्नता सांविधानिक समता का अतिक्रमण करती है। रिट याचिका के ज्ञापन में इस निमित्त कथन किए गए हैं—

"किसी होटल द्वारा प्रदाय किए जाने वाले खाद्य अथवा पेय पर तथा ऐसे किसी रेस्तरां अथवा भोजनालय द्वारा जो होटल में स्थित नहीं है (अथवा ऐसे किसी होटल में जिसे अधिनियम लागू नहीं होता) प्रदाय किए जाने वाले खाद्य अथवा पेय पर होने वाले व्ययपर कर उद्गृहीत करने के बीच विभेद करने के लिए कोई आधार या बोधगम्य प्रभेद नहीं है भले ही खाद्य अथवा पेय की कीमत ऐसे होटल में जिसे अधिनियम लागू होता है वैसी ही मदों की कीमत से अधिक है। होटल से बाहर खाद्य अथवा पेयों पर, जिनका प्रदाय होटल द्वारा किया जाता है, होने वाले व्यय पर कर उद्ग्रहण के बीच और होटल से बाहर खाद्य और पेयों पर, जिनका प्रदाय होटल द्वारा नहीं किया जाता है, उपगत व्यय पर कर उद्ग्रहण के बीच विभेद करने के लिए कोई बोधगम्य अंतर (प्रभेद) भी नहीं है, भले ही पश्चात्कथित व्यय पूर्वकथित से अधिक हो......"

"अपवाद (सी) के साथ पठित खंड 5 (डी) की बाबत यह मनमानापन और बोधगम्य अंतर और भी स्पष्ट है। उदाहरणस्वरूप यदि कोई दुकान अथवा कार्यालय किसी होटल के स्वामित्व में है तो ऐसी किसी दुकान अथवा कार्यालय में उपगत व्यय-कर लगेगा किंतु यदि ऐसी दुकान अथवा कार्यालय होटल के स्वामित्व अथवा प्रबंधाधीन नहीं है भले ही वह होटल परिसर में स्थित हो तो होटल द्वारा ऐसा व्यय आक्षेपित व्यय कर के दायित्वाधीन नहीं होगा।"

"दृष्टांत स्वरूप यह कहा जाता है कि मुंबई शहर में ऐसे बहुत से रेस्तरां हैं जैसे कि टॉक आफ दि टाउन, चाइना गार्डन, गेजेबो एंड गेलार्ड जो कि उनकी सजावट, साजसज्जा (फर्निशिंग) व्यंजन सूची के प्रकार, मदों की कीमत, सेवा के मानकों के दृष्टिकोण से हर प्रकार से उसी स्थिति में हैं जैसे कि वे रेस्तरां जो उन

1989(5) eILR(PAT) SC 107

होटलों में स्थित हैं जिनको अधिनियम लागू होता है। ऐसे रेस्तराओं के ग्राहक भी उतने ही संमृद्ध हैं जितने कि उन रेस्तराओं में जाने वाले व्यक्ति हैं जो (रेस्तरां) उन होटलों में स्थित हैं जिनको अधिनियम लागू होता है। इसके अतिरिक्त उक्त स्वतंत्र रेस्ताराओं में से बहुत से उन रेस्तराओं या उन आहार कक्षों से अधिक विलासितापूर्ण और महंगे हैं जो मुंबई शहर के उन होटलों से संलग्न हैं जिनको अधिनियम लागू होता है जिनमें एक या अधिक कमरे के लिए प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 400 रुपये या उससे अधिक का टैरिफ प्रभारित किया जाता है।"

अब यह बात सुस्थिर है कि यद्यपि कराधायक विधियां अनुच्छेद 14 से बाहर नहीं हैं तथापि वित्तीय नीति बनाने में विविध आर्थिक कसौटियों के विस्तृत भेद को ध्यान में रखते हुए विधानमंडल को कराधान के लिए व्यक्तियों, विषय-वस्तु, घटनाओं आदि का चुनाव करने के मामले में व्यापक स्वतंत्रता (विवेकाधिकार) प्राप्त है। तदनुसार कराधायक विधि में विभेद की बुराई की कसौटियां कम कठोर हैं। विरोधी, विभेदात्मक व्यवहार के अभिकथनों की परीक्षा करने के लिए जिस बात पर ध्यान दिया जाना है वह उसकी शब्दावली नहीं है बल्कि इसके उपबंधों पर वास्तविक प्रभाव है। जैसा कि एक पुरानी कहावत है विधानमंडल को किसी चीज पर कर लगाने के लिए हर वस्तु पर कर नहीं लगाना होता। यदि एक ग्रुप (समूह) के बीच समता और एकरूपता है तो विधि विभेदात्मक नहीं होगी। इस मामले पर इस न्यायालय के विनिश्चयों ने विधानमंडलों को कराधान के प्रयोजनार्थ मदों को वर्गीकृत करने में अत्यधिक व्यापक विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए अनुज्ञात किया है, जब तक कि यह (विधानमंडल) विशेष व्यक्तियों अथवा वर्गों के विरुद्ध स्पष्ट और शत्रुतापूर्ण विभेद करने से विरत रहता है।

किंतु इस सभी विवेकाधिकार के साथ समता का कुछ उल्लेखनीय अभाव कराधान विधियों में भी प्रभेदात्मक प्रभार के लिए वर्गीकरणों को लागू होगा। वर्गीकरण तर्कपूर्ण और ऐसी कुछ क्वालिटियों और लक्षणों पर आधारित होना चाहिए जो उन व्यक्तियों में मौजूद हैं जिन्हें एक गुण में रखा गया है और उस वर्ग से बाहर छोड़े गए अन्य व्यक्तियों में उनका अभाव है। किंतु केवल यही बात पर्याप्त नहीं है प्रभेद का विधि द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ तर्कपूर्ण संबंध होना चाहिए। राज्य कतिपय उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक रूप से, अपनी सरकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी विधियां बनाता है जो भिन्न ग्रुपों अथवा व्यक्तियों के वर्ग के संबंध में भिन्न रूप से प्रवर्तित होती हैं और इसलिए उसके पास व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को प्रभेदित करने और वर्गीकृत करने की शक्ति होनी चाहिए। यह भी माना गया है कि अपवर्जन अथवा सम्मिलित किए जाने के लिए लागू किए जाने वाले कोई प्रमित अथवा निश्चित सूत्र अथवा सैद्धांतिक कसौटी अथवा प्रमित वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं हैं। वह कसौटी केवल ऐसी हो सकती है जिसमें सुस्पष्ट मनमानापन हो जिसे समय की महसूस की जाने वाली आवश्यकताओं और अनुभव द्वारा अनुप्राणित सामाजिक अभ्यावश्यकताओं के संदर्भ में लागू किया जा सकता है।

22. वस्तुओं के मूल्य में अथवा आपतन (भार) वाले व्यक्तियों की आर्थिक श्रेष्ठता के बीच भेद पर आधारित वर्गीकरण भी सुमान्य हैं। युक्तियुक्त वर्गीकरण वह है जिसके

अंतर्गत वे सब व्यक्ति आ जाएं जो एक ही जैसी स्थिति वाले हैं और उनमें ऐसा कोई नहीं है जो कि एक जैसी स्थिति बाला नहीं है। यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या व्यक्ति एक ही जैसी स्थिति में हैं, हमें वर्गीकरण के और विधि के प्रयोजन से परे देखना होगा।

जयपुर होजरी मिल्स लिमिटेड बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में राजस्थान विक्रय-कर अधिनियम, 1950 के अधीन जारी की गई अधिसूचना पर आपत्ति की गई थी जिसमें 4 रुपये से अनधिक वाले प्रति (सिलेसिलाए) वस्त्र के विक्रय को कर से छूट दी गई थी। इस न्यायालय ने वर्गीकरण को अनुज्ञेय पाया। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया—

> "...यह ध्यान में रखना होगा कि कराधान के मामलों में विधानमंडल को वर्गीकरण के मामले में व्यापक स्वतंत्रता प्राप्त है। इस प्रकार व्यापक विवेक का उन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का चयन करने में प्रयोग किया जा सकता है, जिन पर कर लगाया जाएगा और कानून को केवल मात्र इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह कुछ व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर ही कर अधिरोपित करता है अन्य वस्तुओं पर नहीं। केवल उसी स्थिति में, जबकि अपने चयन के दायरे में विधि असमान रूप से प्रवर्तित होती है, और अविधिमान्य वर्गीकरण के आधार पर न्यायोचित नहीं हो सकती, अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होगा।"

हीरालाल बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "...विधानमंडल को माल की प्रकृति को परिभाषित करने की स्वतंत्रता प्राप्त है जिसके विक्रय अथवा क्रय पर कर लगाया जाना चाहिए। विधानमंडल, बिना दली अथवा अप्रसंस्कृत दालों से प्रसंस्कृत अथवा दली हुई दालों को पृथक् करने के लिए और इन दो को पृथक् और स्वतंत्र माल मानने के लिए सक्षम था।"

> "...किंतु कराधायक कानून के मामले में विधानमंडल को वर्गीकरण की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं।" (पृ० 510)

> "...प्रसंस्कृत अथवा दली हुई दालों एवं अप्रसंस्कृत अथवा बिना दली हुई दालों के बीच वर्गीकरण एक युक्तियुक्त वर्गीकरण है। यह उस प्रयोग पर आधारित है जो उस माल का किया जा सकता है। अतः हमारी राय में आक्षेपित वर्गीकरण से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता।" (पृ० 511)

गुजरात राज्य बनाम **श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड**[3] वाले मामले में न्या० मैथ्यू ने यह कहा—

> "अधिनियमितियां जिन स्थितियों के बारे में होती हैं, वे सार्वभौम नहीं होती हैं। विधि में वे प्रभेद प्रतिबिम्बित होते हैं जो वास्तविकताओं में विद्यमान हैं अथवा

---

[1] [1974] 3 उम० नि० प० 2054=1970 (2) एस० सी० सी० 27.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० नि० सा० 33=1973 (2) एस० सी० आर० 502.

[3] [1974] 2 उम० नि० प० पृ० 152=1974 (3) एस० सी० आर० 760.

कम से कम विधायकों की समझ में, जिनके ऊपर वस्तुतः उपयुक्त विधि बनाने का उत्तरदायित्व है, विद्यमान प्रतीत होते हैं। विधान अनिवार्य रूप से अनुभव सिद्ध होता है। उसका काम न्यूनाधिक बाह्य स्थूल जगत के बारे कार्रवाई करना है, न कि कल्पना के विशुद्ध तर्कसम्मत प्रतिमानों के बारे में। विधान में वर्गीकरण अन्तर्निहित है। उन विशिष्ट प्रभेदों को, जो वस्तुतः अस्तित्वशील है पहचानना ही जीवंत विधि है, व्यावहारिक प्रभेदों को अनदेखी करना और कुछ अव्यावहारिक समानताओं पर ध्यान केंद्रित करना निर्जीव तर्क है।"

"उपादेयता के संबंध में कर और आर्थिक विनियमन वाले मामलों में, विधायी विवेक के प्रति न्यायिक आदर के लिए नहीं, तो न्यायिक स्व-नियंत्रण से काम लेने के लिए मजबूत कारण हैं। अन्ततोगत्वा निश्चित उत्तरदायित्व विधानमंडल का है। न्यायालयों को शक्ति केवल मिटाने की है बनाने की नहीं है। जब ये बातें आर्थिक विनियमन की पेचीदगी, अनिश्चितता, गलती करने की संभाव्यता, विशेषज्ञों का विस्मयकारक विरोध, और घटनाओं द्वारा न्यायाधीशों के बार-बार झुठलाए जाने से जुड़ जाती हैं, तो यह देखा जा सकता है कि स्व-नियंत्रण ही वह मार्ग है जो न्यायिक बुद्धिमत्ता और संस्थागत सम्मान और स्थायित्व की ओर ले जाता है।" (पृ० 784)

जी० के० कृष्णन बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में न्या० मैथ्यू ने **सैन एन्टोनिक स्कूल डिस्ट्रिक्ट** बनाम **बोड्रिस**[2] वाले मामले में संयुक्त राज्य अमरीका की सुप्रीम कोर्ट की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट किया—

"इस प्रकार जब हम यह स्वीकार करते हैं कि इस न्यायालय के न्यायाधिपतियों को न तो विशेष ज्ञान प्राप्त है और न वे उन स्थानीय समस्याओं से ही परिचित हैं जो राजस्व प्राप्त करने तथा उसके व्ययन के संबंध में बुद्धिमत्तापूर्ण फैसले करने के लिए आवश्यक है, तो हमारे कथन का आधार सुपरिचित है। फिर भी हमारा राज्यों से यह अनुरोध है कि वे या तो वर्तमान प्रणाली को आमूल रूप में बदल दें या फिर सम्पत्ति कर को पूरी तरह से हटा दें और कराधान का कोई और रूप अपनाएं। कर चाहे संपत्ति या आय पर या वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर अधिरोपित किया जाए, कराधान की कोई भी स्कीम अभी तक ऐसी नहीं बनी है जो विभेद के दोष से सर्वथा मुक्त हो। ऐसे जटिल क्षेत्र में जिसमें कोई भी दूसरा संपूर्ण विकल्प मौजूद नहीं है, न्यायालय के लिए अच्छा यही होगा कि वह संवीक्षा का बहुत कठोर मानक अधिरोपित न करे, जिसमें कहीं ऐसा न हो कि स्थानीय विधि की सभी स्कीमों पर समान संरक्षण खंड (ईक्विटी प्रोटेक्शन क्लाज) के अधीन आलोचना आरंभ हो जाए।" (पृ० 729)

आय-कर अधिकारी बनाम **एन० तकीम रॉय लिम्बे**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था—

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० पृ० 126 = 1975 (2) एस० सी० आर० 715.

[2] [1975] 2 उम० नि० प० 154.

[3] 1976 (3) एस० सी० आर० 413

"...विधानमंडल को विधायी सक्षमता के भीतर उन व्यक्तियों, जिलों, मालों सम्पत्तियों, आयों और वस्तुओं को चुनने और वर्गीकृत करने की पर्याप्त स्वतंत्रता है जिन पर यह कर लगाएगा और जिन पर कर नहीं लगाएगा। जब तक इस व्यापक और लचीली परिधि के भीतर कराधान कानून द्वारा वर्गीकरण किया जाता है वह समता के सिद्धांत में अन्तर्निहित मूलमूत सिद्धांतों का अतिक्रमण नहीं करता, अतः इस पर विभेद के आधार पर मात्र इस कारण आपत्ति नहीं की जा सकती कि यह कुछ आयों और वस्तुओं पर कर लगाता है और कुछ को कर से छूट देता है और न ही यह तथ्य विधि को अविधिमान्य बनाने में स्वयं का कोई आधार है कि वह उसी प्रवर्ग के कुछ व्यक्तियों पर अधिक लगाया गया है। केवल तभी जब अपने चुनाव की परिधि के भीतर विधि असमान रूप से प्रवर्तित होती है और उसे विधिमान्य वर्गीकरण के आधार पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होगा "

प्रस्तुत मामले में वर्गीकरण के आधारों को मनमाना और अबोधगम्य नहीं कहा जा सकता और न ही ऐसा जिसका विधि के उद्देश्य के साथ तर्कपूर्ण संबंध न हो। ऐसे होटल को जिसमें आवास सुविधा की इकाई की प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कीमत 400 रुपये से ऊपर है उसे विधायी प्रज्ञा के अनुसार उन व्यक्तियों की आर्थिक श्रेष्ठता के आधार पर एक अलग वर्ग समझा जा सकता है जो इसके शुल्क, सुविधा और सेवाओं का उपभोग कर सकते हैं। इस विधायी धारणा को अतर्कपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह भी समान रूप से सुमान्य है कि न्यायिक निषेधाधिकार का प्रयोग केवल ऐसे मामलों में ही किया जाना है जिसमें युक्ति युक्त संदेह के लिए कोई गुंजाइश न हो। सांविधानिकता की उपधारणा की जाती है। जेम्स ब्राडले थायर के शब्द उल्लेखनीय हैं।--

"यह नियम इस बात को मान्य ठहराता है कि सरकार की विशाल, जटिल और सदैव बढ़ने वाली अभ्यावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए जो कुछ किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के निकाय को असांविधानिक प्रतीत हो वही किसी अन्य को युक्तियुक्त रूप से वैसा प्रतीत नहीं होगा। यह कि संविधान के प्रायः भिन्न निर्वचन किए जा सकते है, यह कि विकल्प और निर्णय की प्रायः एक सीमा होती है, यह कि ऐसे मामलों में संविधान विधानमंडल पर कोई एक विनिर्दिष्ट राय अधिरोपित नहीं करता बल्कि विकल्प की इस परिधि को खुला छोड़ देता है और जो भी विकल्प तर्कपूर्ण है वही सांविधानिक है।"

(अधोरेखांकित भाग पर जोर दिया गया)

(देखें वैलेस मेंडेलसन कृत सुप्रीम कोर्ट स्टेटक्राफट; दि रूल आफ ला एंड मैन : पृ० 4)

थायर ने अब से बहुत पहले सन् 1811 में पेन सिलवेनिया के चीफ जस्टिस (मुख्य न्यायमूर्ति) के शब्दों को निर्दिष्ट किया जो स्मरणीय हैं—

"महत्वपूर्ण कारणोंवश सांविधानिक अर्थान्वयन के संबंध में सिद्धांत के रूप में

संयुक्त राज्य अमरीका की सुप्रीम कोर्ट, इस न्यायालय और संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रख्यात हर एक अन्य न्यायालय ने यह माना है कि विधानमंडल के किसी अधिनियम को तब तक शून्य घोषित नहीं किया जाना है जब तक संविधान का अतिक्रमण इतना सुस्पष्ट न हो कि उसमें युक्तियुक्त संदेह के लिए कोई गुंजाइश न हो।"

सेक्रेटरी आफ एग्रीकल्चर बनाम **सेन्ट्रल रायग रिफाइनिंग कंपनी**[1] वाले मामले में संयुक्त राज्य अमरीका की सुप्रीम कोर्ट ने यह मत व्यक्त किया—

"... यह न्यायालय जटिल प्रयोगात्मक आर्थिक विधान के अधूरेपन और अनौचित्यों के लिए अनुतोष हेतु कोई अधिकरण नहीं है।"

मैसर्स हेक्स्ट फार्मास्युटिकल्स लि० बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—

"...आर्थिक विनियमों तथा संबंधित विषयों के प्रश्नों पर न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह विधायी निर्णय का सम्मान करे। जब कर संबंधी शक्ति विद्यमान हो तो भार का विस्तार एक ऐसा विषय है जिस पर विधि निर्माताओं द्वारा विवेकपूर्ण रूप से विचार किया जाना होगा। न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह कर के औचित्य अथवा उसके न्यायोचित होने पर विचार करे या विधायी नीति के क्षेत्र में प्रवेश करे। यदि कर संबंधी विधान का सुव्यक्त आशय तथा सामान्य प्रवर्तन भार को उचित तथा युक्तियुक्त सीमा तक समायोजित करना है, तो सांविधानिक अपेक्षा पूरी हो जाएगी...।"

23. यह दलील दी गई है कि अधिनियम के अधीन 'प्रभार्य-व्यय' की संगणना करने के मानक और अध्युपाय अस्पष्ट और मनमाने हैं। यह संकेत किया गया है कि धारा 5 के खंड (घ) में 'या अन्य तत्समान सेवाओं' अभिव्यक्ति अविनिर्दिष्ट और अस्पष्ट है। यह दलील हमें ठीक नहीं लगती। यह सच है कि जब अधिनियम में 'अन्य तत्समान सेवाओं, की बात कही जाती है तो वह कानून यह अनुध्यात नहीं करता कि 'अन्य सेवाएं' सभी प्रकार से वैसी ही होंगी। यदि वे वैसी ही हुई होतीं तो वास्तव में शब्दों की आवश्यकता न पड़ती। इनका आशय उसके अंतर्गत पूर्वगामी शब्दों में वर्णित सेवाओं की भांति की सेवाओं को न कि उसके सदृश सेवाओं को, सम्मिलित करना है।

'ब्यूटी पारलर, स्वास्थ्य क्लब, तरणताल या के रूप में' पूर्वगामी अभिव्यक्ति के पश्चात् आने वाली 'अन्य तत्समान सेवाओं' अभिव्यक्ति का ऐसे कानूनी संदर्भ में ऐसे शब्दों का निर्वचन करने में एक निश्चित अर्थ होता है। प्रश्न अर्थान्वयन का है कि क्या ऐसी कोई विशेष सेवा धारा के भीतर आती है और इसमें सांविधानिकता का कोई प्रश्न नहीं है।

दलील (ख) भी स्वीकार्य नहीं है।

---

[1] 1949 338 यू० एस० 604.

[[2]1983] 3 उम० नि० प० 881=ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1019.

24. दलील (ग) के बारे में—

यह कथन किया गया है कि अधिनियम के उपबंध अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन याची के मूल अधिकार पर एक अयुक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करते हैं। याचिका में यह प्रकथन किया गया है—

"...उन विभिन्न करों को, जो होटल उद्योग पर लगाए जाते हैं, इस याचिका के प्रारंभिक भाग में वर्णित किया गया है। इस प्रकार किसी होटल में उपभुक्त खाद्य और पेयों की बाबत विक्रय-कर और वर्तमान व्यय-कर का प्रतिनिधित्व करने वाले कर का तत्व उदाहरणस्वरूप महाराष्ट्र में 35 प्रतिशत बैठता है। उसी प्रकार कमरा टैरिफ की बाबत कर का तत्व उदाहरणस्वरूप गुजरात में 37 प्रतिशत आता है। उक्त संगणनाओं के ब्यौरे इस याचिका से उपाबद्ध प्रदर्श 'डी' में दिए गए हैं। आजकल होटल उद्योग पर आय-कर के रूप में अत्यधिक भारी मात्रा में कर लगाया जाता है और यहां तक कि संकर्म संविदाओं पर भी हाल ही में कर लगाया गया है। याचियों का यह कहना है कि अब पर्यटन उद्योग किसी अतिरिक्त भार को सहन करने की स्थिति में नहीं है और आक्षेपित कर शब्दशः इस सीमा तक पहुंच चुका है कि इससे तनिक भी आगे असह्य हो जाएगा..."

यह भी दलील दी गई है कि—

"...याची संगमों के सदस्यों के बहुत से होटलों ने खाद्य और पेयों का प्रदाय करने और आवास की व्यवस्था करने की दीर्घकालीन संविदाएं की हैं। प्रस्तुत व्यय कर के उद्ग्रहण को ध्यान में रखते हुए ऐसी संविदाओं का निष्पादन दुर्भर और असंभव हो जाएगा। अधिनियम में अथवा किसी पृथक् विधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसके द्वारा होटल ऐसे कर को उन व्यक्तियों पर डाल सकते हैं जिन्होंने संविदात्मक दरों पर किन्हीं सेवाओं का लाभ उठाने के लिए संविदा की है..."

25. कोई कराधायक कानून, स्वतः, अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन स्वतंत्रता पर निर्बंधन नहीं हैं। कर की कोई नीति यदि वास्तव में उसे प्रभावी किया जाता है तो कुछ व्यक्तिगत मामलों में उससे कठिनाई हो सकती है। किंतु जब तक विधि मामलों की व्यापकता कम करने की प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है और उच्चतम सामान्य तथ्य को प्रतिबिम्बित करती है तब तक ऐसा करना अपरिहार्य है। यह कहा गया है कि प्रत्येक महान उद्देश्य बलिदान चाहता है। पुनः किसी कर की अत्यधिकता अथवा यह परिस्थिति कि इसके अधिरोपण से इसके आपतन वाले व्यक्तियों का अर्जन अथवा लाभ कम हो जाएगा, स्वतः, और इससे अधिक किसी बात के बिना, अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अधीन अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करता। (कुमारी) सोनिया भाटिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[1] में न्या० फजल अली ने, यद्यपि एक भिन्न संदर्भ में, यह मत व्यक्त किया—

"ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम भारत के संविधान के भाग 4 में अंतर्विष्ट अत्यन्त महत्वपूर्ण सांविधानिक निदेशक सिद्धांतों में से एक को कार्यरूप

देना चाहता है । यदि इस प्रक्रिया में कुछ व्यक्तियों को गंभीर कठिनाई उठानी पड़े तो इससे नहीं बचा जा सकता क्योंकि समष्टि या देश के व्यापक हित में व्यष्टि के हितों का बलिदान करना होगा जैसा कि प्रत्येक महान् लक्ष्य के लिए वस्तुतः बलिदान देना होता है ।"

दलील (ग) में भी कोई सार नहीं है ।

26. परिणामतः, पूर्वोक्त कारणोंवश ये याचिकाएं असफल होती हैं और खारिज की जाती हैं । किंतु मामले की परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं होगा ।

न्या० एस० रंगनाथन के मतानुसार (सम्मत निर्णय)—

27. मैंने रिट याचिकाओं के इस समूह में और दो संबद्ध मामलों, अर्थात् 1981 की सिविल अपील सं० 338 और 339 तथा 1981 की रिट याचिका सं० 254-261 में अपने विद्वान् बंधु न्या० वेंकटाचलैया के निर्णय का परिशीलन किया है । मैं इन सभी मामलों में उनके निष्कर्षों से ससम्मान सहमति व्यक्त करता हूं किंतु कुछ शब्द जोड़ना चाहता हूं, मुख्यतः जहां तक व्यय अधिनियम, 1987 की संवैधानिक मान्यता का संबंध है । चूंकि मेरे विद्वान् बंधु न्यायाधीश ने विभिन्न कानूनों के उपबंधों को उपवर्णित किया है, उनका विश्लेषण किया है और विस्तारपूर्वक विवेचन किया है, जिनकी विधिमान्यता को चुनौती दी गई है, अतः मैं उसकी पुनरावृत्ति से बचने का प्रयास करूंगा और स्वयं को अवधारण हेतु महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर विचार तक ही सीमित रखूंगा ।

28. ऊपरनिर्दिष्ट मामलों के तीनों समूहों में निर्धारितियों की दलीलों में, प्रथमदृष्ट्या एक ओर राज्य अधिनियमितियों के समूह और दूसरी ओर कुछ (दो) केंद्रीय अधिनियमितियों के बीच सीधे टकराव की स्थिति सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, जिससे अधिनियमितियों के एक सैट को अविधिमान्य घोषित करके ही बचा जा सकता है, अन्यथा नहीं । भारत संघ की ओर से हाजिर होते हुए, विद्वान् महान्यायवादी का सशक्त, यदि 'कूटनैतिक' भी प्रयास यह दर्शित करने का था कि अधिनियमितियों के इन सैटों में वस्तुतः टकराव का मार्ग नहीं अपनाया गया है, बल्कि उसके विपरीत वे समानांतरमार्गी हैं और विधानों का प्रत्येक सैट विधायी अक्षमता के आधार पर चुनौती दिए जाने से बिल्कुल मुक्त है । क्या यह दलील स्वीकार्य है और क्या अधिनियमितियों के दोनों सैटों को बचाया जा सकता है या क्या दोनों में से एक सैट को दूसरे की तुलना में अविधिमान्य रहना है—मामलों के इन समूहों में विचारार्थ यही प्रश्न है ।

29. राज्य अधिनियमितियों का सैट, जिससे सिलसिला शुरू हुआ (और दूसरों ने उसका अनुकरण किया), और जो समयक्रम में पूर्वतर है, भारत में अनेक राज्यों द्वारा पारित विभिन्न कानूनों को समाविष्ट करने वाला सैट है । वे विनिर्दिष्ट राज्य विधान, जिन्हें हमारे समक्ष याचिकाओं और अपीलों में (अंत में कोष्ठकों में यथा दर्शित) चुनौती दी गई है इस प्रकार हैं :—

(क) गुजरात टैक्स आन लग्जरीज (होटल्स एंड लाजिंग हाउसिज) ऐक्ट, 1977 (1977 का अधिनियम सं० 24)

[सि० अ० 338, 339/1981; रिट याचिका सं० 7990, 8338, 8339, 9110/1981]

(ख) तमिलनाडु टैक्स आन लग्जरीज इन होटल्स एंड लाजिंग हाउसिज आर्डिनेन्स, 1980 जिसके पश्चात् एक अधिनियम (1981 का अधिनियम सं० 6) पारित किया गया।

[रिट याचिका सं० 162/80]

(ग) कर्नाटक टैक्स आन लग्जरीज (होटल्स एंड लाजिंग हाउसिज) ऐक्ट, 1979 (1979 का अधिनियम सं० 22)

[रिट याचिका सं० 1271-2/82]

(घ) वैस्ट बंगाल एंटरटेंमैंट्स एंड लग्जरीज (होटल्स एंड रेस्तरांज) टैक्स ऐक्ट, 1972 (1972 का अधिनियम सं० 21)

[रिट याचिका सं० 5321/85]

उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और केरल राज्यों ने भी ऐसी ही अधिनियमितियां पारित की हैं, जो इस प्रकार हैं—

(क) उत्तर प्रदेश कराधान और भू-राजस्व विधि अधिनियम, 1975 (1975 का अधिनियम सं० 8);

(ख) महाराष्ट्र टैक्स आन लग्जरीज होटल्स एंड लाजिंग हाउसिज ऐक्ट, 1987 (1987 का अधिनियम सं० 41); और

(ग) केरल टैक्स आन लग्जरीज इन होटल्स एंड लाजिंग हाउसिज ऐक्ट, 1976 (1976 का अधिनियम सं० 32), जिसके द्वारा 1976 का केरल अध्यादेश सं० 5 निरसित किया गया।

30. उपर्युक्त कानून प्रकटतः विभिन्न राज्य विधानमंडलों द्वारा, संविधान के अनुच्छेद 246 (3) की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 62 के साथ पठित, संविधान के अनुच्छेद 246 (3) के अधीन उन्हें प्रदत्त विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, पारित किए गए हैं, जो (प्रविष्टि) इस प्रकार है :—

"62. विलास-वस्तुओं पर कर, जिनके अंतर्गत मनोरंजन, आमोद, दांव और छूत पर कर हैं।"

(उसके कुछ पहलुओं को सूची II की प्रविष्टि 54 से संबद्ध करने का भी प्रयास किया गया है, किंतु चूंकि यह वर्तमान मामले से प्रयोजन के लिए उसी आधार पर स्थित है, जिस पर प्रविष्टि 62, अतः इसमें इसके पश्चात् प्रविष्टि 54 के प्रति कोई पृथक् निदेश नहीं किया गया है)। ऐसा इसलिए स्पष्ट है कि उपर्युक्त अधिनियमितियों में से प्रत्येक के संक्षिप्त नाम में उसे 'होटलों' या 'होटलों और रेस्तराओं' या 'होटलों और वासाओं' में या में प्रदत्त विलास

वस्तुओं' या 'मनोरंजन और विलास-वस्तुओं, परकर के 'अधिरोपण' 'उद्ग्रहण' और 'संग्रहण' का उपबंध करने के लिए अधिनियम के रूप में वर्णन किया गया है। यद्यपि 'विलास-वस्तुओं और मनोरंजनों' का विभिन्न रीतियों में प्रबंध किया जा सकता है या उपयोग किया जा सकता है और उन सभी को ऊपरनिर्दिष्ट प्रविष्टि के आधार पर कर की विषयवस्तु बनाया जा सकता है, तथापि ये अधिनियमितियां ऐसे मनोरंजनों और केवल एक प्रकार की विलास-वस्तुओं तक ही सीमित रखी गई हैं, अर्थात् वे, जिनकी सुसंगत अधिनियमितियों के अधीन यथापरिभाषित होटलों, रेस्तराओं या वासाओं में व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे स्थानों में प्रदत्त केवल कतिपय विनिर्दिष्ट वर्गों के मनोरंजनों या विलास-वस्तुओं को ही कराधीन बनाया गया है। करों के अधिरोपण, उद्ग्रहण और संग्रहण के विवरण अधिनियमितियों के अनुसार अलग-अलग हैं और यहां उन्हें दोहराये जाने की आवश्यकता नहीं है। विधानों की स्कीम से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वे सब ऊपर उपवर्णित सूची II की प्रविष्टि 62 की परिधि के अंतर्गत आते हैं। मेरे विद्वान् बंधु न्यायाधीश ने ऐसा ही अभिनिर्धारित किया है और मैं भी उससे सहमत हूं। वस्तुतः उनकी विधिमान्यता को कदाचित् चुनौती न दी जाती, यदि संसद् द्वारा होटल आमदनी कर अधिनियम (होटल रिसीट्स टैक्स ऐक्ट), 1980 (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् 1980 वाला अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित न किया गया होता। जब, 1980 वाले अधिनियम के अनुसरण में, तारीख 1 फरवरी, 1981 से होटल वालों (मालिकों) की आमदनी में से कुछ पर कर प्रभारित करने का प्रयास किया, तब कुछ प्रभावित होटल वालों (मालिकों) के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपनी आमदनी पर इस दोहरे कराधान के विरुद्ध अनुदेश के लिए न्यायालय में जाते। अधिनियमितियों के दोनों सैटों की सक्षमता को चुनौती देते हुए रिट याचिकाएं फाइल की गईं और अब यह अंतिम सुनवाई के लिए प्रस्तुत की गई हैं। तथापि, यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि होटल आमदनी कर का उद्ग्रहण एक वर्ष के पश्चात् वापस ले लिया गया; तथापि वह एक निर्धारण-वर्ष तक प्रवृत्त रहा और इसलिए उसकी विधिमान्यता को चुनौती पूर्णतः सैद्धांतिक नहीं है। मेरे विद्वान् बंधु न्यायाधीश ने 1980 वाले अधिनियम की, उसका संबंध संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 82—कृषि आय से भिन्न आय पर कर—से जोड़ते हुए विधिमान्यता कायम रखी है। मैं ससम्मान उससे सहमति व्यक्त करता हूं।

31. तथापि, 1980 वाले अधिनियम के वापस लिए जाने द्वारा प्रदत्त अनुतोष अल्पजीवी रहा; वह 'तूफान से पूर्व की शांति' मात्र था, जो (तूफान) व्यय-कर अधिनियम, 1987 (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् 1987 वाला अधिनियम कहा गया है) के रूप में सभी होटल वालों पर आ पड़ा। इस अधिनियमिति के प्रति निर्देश करने से पूर्व, जिसकी विधिमान्यता को 1987 की रिट याचिका सं० 1393 में चुनौती दी गई है, समय की मशीन तीन दशक पहले की अवधि पर घुमा देना सुविधाजनक होगा।

32. कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर, श्री निकोलस कालडोर 'व्यय-कर' नामक उद्ग्रहण के प्रतिपादक थे। जब भारत सरकार ने 1950) के दशक में किसी समय उनसे यह निवेदन किया कि वह इस देश में प्रचलित प्रत्यक्ष कराधान की पद्धति का अवलोकन करें और कर सुधार की व्यापक स्कीम के लिए अपनी सिफारिशें दें, तब

उन्होंने, अन्य बातों के साथ-साथ, 'व्यय-कर' के उद्ग्रहण का सुझाव दिया। उनकी यह राय थी कि उस समय प्रचलित दरों से निम्नतर दरों पर आय-कर उद्ग्रहण की अनुपूर्ति करते हुए, ऐसा उद्ग्रहण सरकार को अपने संसाधनों को और अधिक प्रभावी रूप से उपयोग में लाने के लिए समर्थ बनाएगा। हमारे समक्ष बहस के दौरान, निकोलस कालडोर की पुस्तक 'एन एक्सपेंडीचर टैक्स' (जो इंग्लैंड के जार्ज ऐलन और अनविन लि० द्वारा प्रकाशित की गई है) और उनकी कृति 'सर्वे रिपोर्ट आन इंडियन टैक्स रिफार्म्स' (जो भारत सरकार द्वारा प्रकाशित की गई है) के अंशों के प्रति प्रचुर (पर्याप्त) निर्देश किए गए हैं किंतु यहां यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि प्रो० कालडोर की रिपोर्ट को संसद् द्वारा, व्यय-कर अधिनियम, 1957 (जिसे इसे इसमें इसके पश्चात् 1957 वाला अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित करके, कार्यान्वित किया गया। उपर्युक्त अधिनियम की विधिमान्यता को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई किंतु वह असफल रही। इस न्यायालय के विनिश्चय को **आजमझा बहादुर** बनाम **एक्सपेंडीचर टैक्स आफिसर**[1] के रूप में संप्रकाशित किया गया है। उक्त अधिनियम की प्रकृति और परिधि पर उपर्युक्त विनिश्चय में विचार किया गया है और यहां उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

33. कुछ वर्षों के पश्चात्, ठीक-ठीक कहें तो, निर्धारण वर्ष 1965-66 से 1957 वाला अधिनियम वापस ले लिया गया। उसे इसलिए अधित्यक्त कर दिया गया है क्योंकि उसे लागू करना अत्यधिक जटिल और कठिन पाया गया और इस कारण भी कि उससे होने वाली राजस्व की प्राप्ति उन निर्धारितियों की सीमित संख्या के कारण, जो उसके अंतर्गत आते थे, सारभूत नहीं थी। उसके अधित्यक्त किए जाने के पश्चात्, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, 1980 वाला अधिनियम बहुत ही थोड़े समय के लिए प्रभावी रहा और उसकी विधिमान्यता को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं के लंबित रहने के कारण कदाचित उसे वापस लेना पड़ा। अब, कुछ अंतराल के पश्चात्, संसद् ने 1987 वाला अधिनियम पारित किया है। एक ओर इस अधिनियम की परिधि और 1957 और 1980 वाले अधिनियमों की तुलना में उसकी विशेषताएं और दूसरी ओर राज्य विधानों के साथ तुलना करने पर उसकी समानताएं, बंधु न्या० वेंकटाचलैया के निर्णयों में सामने लाई गई हैं और हमें उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इसी पृष्ठभूमि में हमने 1987 वाले अधिनियम के सारतत्व को अवधारित करना है और यह विनिश्चय करना है कि क्या संसद् को उसे अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त थी या नहीं।

34. इन मामलों में वह संक्षिप्त प्रश्न, जिसका उत्तर दिया जाना है, यह है कि क्या राज्यों और संघ द्वारा अधिरोपित दोनों प्रश्नगत उद्ग्रहण प्रभावी रह सकते हैं या क्या हमें उद्ग्रहणों को 'विलास-वस्तुओं' पर कर अथवा 'आय' या 'व्यय' पर कर मानना है और इस प्रकार उनमें से एक की ही विधिमान्यता कायम रखनी है; दोनों की नहीं। मैं नहीं समझता कि इस बारे में कोई भी संदेह हो सकता है कि उन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में, जो भारत में विद्यमान थीं, किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे होटलों में ठहरना विलास-वस्तु की कोटि में आता था, जिनमें ऊंचे किराये प्रभारित किए जाते थे

[1] 1972-1 एस० सी० आर० 470.

और दूरभाष, दूरदर्शन और वातानुकूल आदि जैसी सुविधाओं की व्यवस्था की जाती थी। **अब्दुल कादिर एंड संस बनाम केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय से, विशेष रूप से पृ० 699-701 में किए गए विवेचन से यह बात संदेह से परे सिद्ध हो जाती है। गुजरात उच्च न्यायालय के न्या० ठक्कर ने भी (जैसे कि माननीय न्यायाधीश उस समय थे) अपीलाधीन निर्णय में इस पहलू का विवेचन किया है और मैं उनके इस तर्क और निष्कर्ष से सहमति व्यक्त करता हूं कि गुजरात कानून सूची II की प्रविष्टि 62 के अधीन राज्य विधानमंडलों को उपलब्ध शक्तियों के प्रयोग में विधिमान्य रूप से अधिनियमित किया गया है। यह अन्य आक्षेपित राज्य अधिनियमितियों को भी समान रूप से लागू होता है।

35. यह तर्क दिया गया है कि किरायों के लिए आर्थिक सीमाएं इतने निचले आंकड़ों पर नियत की गई हैं कि सामान्य आरामदेह होटल या वासा में (जो अत्यधिक सुख-सुविधाओं से युक्त नहीं है), अस्थायी रूप से ठहरना भी, जब कोई व्यक्ति अपने घर से बाहर जाने के लिए विवश हो जाता है, इन मानकों के अनुसार विलास-वस्तु की कोटि में आएगा। वस्तुतः ऐसी दलील के समर्थन में गुजरात याचियों द्वारा कुछ आंकड़े दिए गए हैं। किंतु मैं समझता हूं कि यह ऐसा मामला है, जो विधायी अवधारण के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। जैसा कि सुविदित है, विधानमंडल को, विशेष रूप से कराधान कानून के मामले में, काफी छूट प्राप्त रहती है और यह अवधारित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि विलास-वस्तु उपदर्शित करने के मानक नियत करने में विधानमंडल ने गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया है। वस्तुतः आंकड़ों में समय-समय पर संशोधन किया गया है और यह उपधारणा करनी ही होगी कि विधानमंडल के पास ये मानक नियत करने के लिए ठोस कारण थे। अतः राज्य विधान स्पष्टतः राज्य विधानमंडलों की सक्षमता के अंतर्गत आते थे और उन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती है।

36. यह भी उतना ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि 1980 वाले अधिनियम का सार और विधायन, जैसा कि न्या० वैंकटाचलेय्या द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, सूची I की प्रविष्टि 82 से जोड़ा जा सकता है। तीनों सूचियों में विधायी प्रविष्टियों की परिधि का निर्वचन करने में, हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि एक ओर यह वांछनीय है कि प्रत्येक सूची की प्रत्येक प्रविष्टि का व्यापकतम निर्वचन किया जाना चाहिए, जबकि दूसरी ओर, यह बात भी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि तीनों सूचियों को एक साथ और सामंजस्य रूप में पढ़ा और समझा जाना चाहिए। हमारा ध्यान सूची II की कुछ प्रविष्टियों के प्रति आकर्षित किया गया जिनसे यह दर्शित होता है कि उनकी बाबत विधायी शक्ति का प्रयोग, सूची I के अधीन परिकल्पित संसद् की शक्तियों के अधीन रहते हुए, किया जाना चाहिए (देखें प्रविशिष्ट सं० 2, 17, 22, 23, 24, 26, 27, 32, 33 और 50) इस बात के बारे में कोई संदेह नहीं है कि इन प्रविष्टियों को सूची I की प्रविष्टियों के अधीन पढ़ा जाना चाहिए, जिनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, या उनमें निर्दिष्ट संसद् की शक्तियों के अधीन। तथापि, ये उन प्रविष्टियों के उदाहरण हैं, जो, उनकी भाषा के ही आधार पर, सूची-I की प्रविष्टियों द्वारा नियंत्रित है। किंतु इन उदाहरणों के अतिरिक्त भी, अनुच्छेद के खंड (1) और (3) की भाषा से यह स्पष्ट हो

[1] 1976 (2) एस० सी० आर० 690

जाता है कि सूची-II में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की राज्य विधान-मंडल की शक्ति सूची-I में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की संसद् की अनन्य शक्ति के अधीन है। अतः यदि कोई मामला संघ सूची की किसी प्रविष्टि के अंतर्गत आता है, तो संसद् की उसके संबंध में विधियां बनाने की शक्ति पर कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किए जा सकते हैं। यह स्थिति विधायन की साधारण शक्ति के संबंध में है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **सुन्दर रामय्यार**[1] वाले मामले में उपदर्शित किया गया है,) विधायी प्रविष्टियां इस प्रकार व्यवस्थित की जाती हैं कि सामान्यतः विधियां अधिनियमित करने की शक्ति और कर अधिरोपित करने की शक्ति पर अलग-अलग विचार किया जाता है। संसद् को उपलब्ध कराधान की विषय-वस्तुएं सूची I की प्रविष्टि 82 से 97 तक में प्रगणित की गई हैं; राज्य विधानमंडलों को उपलब्ध विषयवस्तुएं सूची II की प्रविष्टि 45 से 63 तक में हैं और दोनों को उपलब्ध विषवस्तु सूची III की प्रविष्टि 44 में हैं। धारा 246(1) के अधीन संसद् को सूची I में प्रगणित किसी विषय की बाबत विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है—और इसके अंतर्गत कर अधिरोपित करने की शक्ति भी आती है। ऐसी स्थिति में और इस तथ्य को देखते हुए कि 1980 वाला अधिनियम सारतः और तत्वतः आय पर कर है, उसकी संवैधानिक मान्यता पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता है।

37. किंतु क्या 1987 वाली संघ अधिनियमिति का भी उन्हीं कारणों से इस रूप में समर्थन किया जा सकता है कि उसके द्वारा ऐसा व्यय-कर अधिरोपित किया गया है, जो, जैसा कि आजमझा वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, सूची I की प्रविष्टि 97 की परिधि के अंतर्गत आता है। श्री पालखीवाला का यह कहना है कि उसका इस प्रकार समर्थन नहीं किया जा सकता है। उनकी दलील यह है कि 1987 वाले अधिनियम द्वारा उद्गृहीत कर वस्तुतः और तथ्यतः व्यय-कर नहीं है। उनका यह कहना है कि विधानमंडल के लिए उसके द्वारा उद्गृहीत किए जाने के लिए प्रस्तावित कर का ऐसा वर्णन या लेबिल (नाम) देना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वह सूची II के अंतर्गत नहीं आता है और यह दावा नहीं किया जा सकता है कि उसे प्रविष्टि 97 के अधीन कायम रखा जाना चाहिए। अधिरोपित किए जाने के लिए ईप्सित कर ऐसा कर होना चाहिए, जिसका आर्थिक जगत में वास्तविक अस्तित्व और मान्यता होनी चाहिए। उनके अनुसार, व्यय कर की आर्थिक संकल्पना ऐसे कर की है, जो व्यय की अलग-अलग मदों पर नहीं, बल्कि निर्धार्य सत्ता द्वारा उपगत समग्र व्यय पर उद्गृहीत किया जाता है, जिस प्रकार कि आयकर ने कराधेय सत्ता की संपूर्ण आय पर कर के रूप में मान्यता प्राप्त की है। व्यय-कर की यही वह संकल्पना थी, जो निकोलस कालडोर के मन में थी और जिसे 1957 वाले अधिनियम में सन्निविष्ट किया गया और इसलिए जिसका इस न्यायालय द्वारा सानुमोदन पृष्ठांकन किया गया। यह कहा गया है कि व्यय की कुछ मदों पर कर अनिवार्यतः व्यय-कर ही नहीं होता है। इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रतिनिर्देश करते हुए, जिनमें धनकर और दान-कर के उद्ग्रहण की विधिमान्यता को कायम रखा गया है, जहां तक उससे कृषिक भूमियां प्रभावित होती थीं (**दान-कर**

---

1 1958 एस० सी० आर० 1422 पृ० 1479 और 1490.

1989(5) eILR(PAT) SC 107

अधिकारी बनाम **डी० एच० नजारेथ आदि**[1], और **भारत संघ** बनाम **एच० एस० ढिल्लों**[2] वाले मामले देखिए), यह निवेदन किया गया है कि यह हो सकता है कि विनिश्चय उस स्थिति में भिन्न हो सकते थे, यदि उनका संबंध दान के अवसर पर उनके पूंजी-मूल्य के प्रति निर्देश से केवल 'भूमियों और भवनों' पर या केवल कृषि भूमियों पर अधिरोपण से संबद्ध होता।

38. इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि कर व्यय कर नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह सामान्यतः 'व्यय' पर नहीं, है बल्कि विनिर्दिष्ट प्रकार के व्यय तक निर्बंधित है। व्यय कर की ऐसी कोई विधिक, न्यायिक, आर्थिक या अन्य संकल्पना नहीं है, जो ऐसे निर्बंधनात्मक अर्थ को न्यायोचित ठहराए। यदि, सिद्धांततः, किसी व्यक्ति द्वारा उपगत व्यय ऐसी विषयवस्तु हो सकता है, जिसके प्रति निर्देश से कर उद्गृहीत किया जा सकता है, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि ऐसा कराधान व्यय की केवल कुछ मदों या प्रवर्गों तक ही निर्बंधित क्यों नहीं किया जाना चाहिए और उसका आधार अनिवार्यतः इतना व्यापक क्यों होना चाहिए, जिससे कि उसके अंतर्गत किसी निर्धार्य सत्ता द्वारा उपगत संपूर्ण व्यय आ सके। आखिरकार, 1957 वाले अधिनियम के अधीन भी, सभी व्यक्तियों का संपूर्ण व्यय कर इसलिए दायी नहीं था। उसके अंतर्गत सारभूत रूप से केवल कतिपय प्रकार के निर्धारिती और व्यय ही आते थे (क्योंकि अनेक प्रकार के व्ययों को छूट प्रदान की गई थी) और वह भी केवल उस समय जब वह कतिपय सीमाओं से अधिक हो। आय-कर या धन-कर या दान-कर अधिनियमों के सादृश्य से भी वस्तुतः हमें कोई सहायता नहीं मिलती है। यद्यपि वे ऐसी अधिनियमितियां हैं, जिनके अंतर्गत कराधीन (कर लगी) विषय-वस्तु का बड़ा क्षेत्र आता है, तथापि ऐसा इसलिए था कि विधानमंडल ने ऐसा करना समीचीन समझा; न कि इस कारण कि वह आय, धन या दान के संपूर्ण क्षेत्र को सम्मिलित करने के लिए बाध्य था। उदाहरणार्थ, केवल होटल आमदनी या लाभांशों या पूंजी-अभिलाभों पर कर अधिरोपित करने वाला अधिनियम सूची I की प्रविष्टि 82 की परिधि के अंतर्गत आय-पर कर होगा, उससे कम नहीं। इसी प्रकार यदि विधानमंडल ने धन-कर के उद्ग्रहण को भूमियों और भवनों जैसी कतिपय आस्तियों तक ही सीमित रखा होता या दान-कर अधिनियम द्वारा केवल कृषिक भूमि के दानों पर ही कर उद्गृहीत किया गया होता, तब भी उनका संघ सूची की सुसंगत प्रविष्टियों की परिधि के अंतर्गत आना समाप्त नहीं होता, जब तक वे सारतः और तत्वतः वे क्रमशः प्रश्नगत आस्तियों के पूंजी-मूल्य पर या दान के संव्यवहार पर कर के रूप में पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, केंद्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम द्वारा सभी प्रकार के माल के विनिर्माण और उत्पादन पर उत्पाद-शुल्क उद्गृहीत नहीं किया जाता है और अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क केवल कुछ माल की बाबत ही उद्गृहीत किया जाता है। इसी प्रकार विक्रय के संबंध में स्थिति है। वस्तुतः यह कहना भी संभव है कि किसी विषयवस्तु की बाबत कोई भी कर उद्ग्रहण, किसी अपवाद या छूट के बिना सामान्यतः प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है और न प्रवर्तित होता ही है। कराधान हेतु

---

[1] 1971-1 एस० सी० आर० 195.

[2] 1972-2 एस० सी० आर० 33.

वस्तुओं और माल का चयन किसी भी कर विधान का मर्म है और सुझाई गई प्रकृति की कोई भी परिसीमा संसद् की कराधान करने की इस चयन-शक्ति में अनुचित कांट-छांट है।

39. ऐसी कोई स्थापित विधायी पद्धति भी नहीं है, जो हमें सुझाई गई रीति में व्यय-कर की संकल्पना को सीमित करने में समर्थ बनाए। जहां तक व्यय-कर का संबंध है, पहले एक मात्र प्रवृत्त विधान 1957 वाला अधिनियम था, जो 8 वर्ष की अवधि के लिए प्रवृत्त था। ऐसा अल्पजीवी विधान ऐसी रीति में विधायी शक्ति की परिधि को सीमित करने के लिए तर्क का आधार नहीं हो सकता है, जिसमें उसका उक्त अधिनियमिति के अधीन प्रयोग किया गया था। यदि इस विधान को वापस लेने के पश्चात्, संसद् ने यह समझा कि सभी प्रकार के व्यय पर कर अधिरोपित करना संभव या समीचीन नहीं था और केवल कतिपय दिशाओं में फिजूलखर्जी पर ही ऐसा उद्ग्रहण अधिरोपित करना पर्याप्त, समीचीन या आवश्यक है, तो निश्चय ही उसे स्थापित विधायी पद्धति के किसी सिद्धांत के आधार पर प्रवारित नहीं किया जा सकता है, जैसा कि विक्रय-कर की बाबत **मद्रास राज्य** बनाम **गैनोन डंकर्ली कंपनी**[1] वाले मामले में किया गया था। उक्त मामले में अनेक दशकों से प्रचलित विधायी प्रवृत्ति का संविधान में प्रयुक्त 'माल का विक्रय' पद का निर्वचन करने में अवलंब लिया गया। किंतु उक्त मामले में, न्यायालय का संबंध एक विधिक पद 'विक्रय' से था, जिसने विधि में और विधायी लिखतों में एक निश्चित अर्थ प्राप्त कर लिया था और प्रविष्टि 93 की परिधि का निर्वचन करने के लिए उस सादृश्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता है। दूसरी ओर, काफी लंबे समय से स्थापित विधायी प्रक्रिया भी, जिसके अधीन केंद्र द्वारा आय-कर उद्ग्रहण सीमित अर्थ में आय की मदों तक (पूंजी अभिलाभों के मुकाबले) निर्बंधित किया गया, केंद्रीय विधायी सूची में प्रयुक्त 'आय पर कर' पद के निर्वचन पर उस प्रकार के निर्बंधन को अधिरोपित करने के लिए पर्याप्त नहीं माना गया : देखें **नवीनचंद मफत लाल** बनाम **आय कर आयुक्त**[2]। न केवल इतना ही, बल्कि आय-कर अधिनियम के अधीन आय की पश्चात्वर्ती परिभाषाओं की, जिनकी काफी व्यापक परिधि है, विधिमान्यता को इस रूप में कायम रखा गया है कि वे उपर्युक्त विधायी प्रविष्टि के अंतर्गत आती हैं। इस संदर्भ में, **नवनीत लाल** बनाम **ए० ए० सी०**[3] **भार्गव** बनाम **संघ**,[4] और **भगवान दास** बनाम **संघ**[5] मामले में किए गए विनिश्चय देखें। जहां तक व्यय-कर का संबंध है, उतनी विधायी पद्धति भी नहीं है, जो हमारे द्वारा सूची I की प्रविष्टि 97 के अधीन 'व्यय पर कर' की संकल्पना पर कोई परिसीमा अधिरोपित करने के कार्य को न्यायोचित ठहराए। इस न्यायालय के विनिश्चय के परिशीलन से, जिसमें 1957 वाले अधिनियम की विधिमान्यता कायम रखी गई है (ऊपर निर्दिष्ट आजमझा वाला मामला) ऐसी किसी परिसीमा को न्यायोचित नहीं ठहराता। कर के व्यापक विस्तार से न्यायालय के लिए उसकी विषयवस्तु

---

1 1959 एस० सी० आर० 379.

2 1955 1 एस० सी० आर० 829.

3 ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 1375.

4 1962 एस० सी० आर० 22.

5 1981 2 एस० सी० आर० 808.

को 'व्यय' के रूप में उपदर्शित करना और उसे अवशिष्टीय प्रविष्टि के अंतर्गत आने वाले विषय के रूप में मानना सरल हो गया, किंतु उससे यह निष्कर्ष निकाला जाना न्यायोचित नहीं ठहरता है कि कोई कर 'व्यय' के प्रति निर्देश से कर नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसके द्वारा सामान्यतः व्यय पर कर अधिरोपित नहीं किया जाता है, बल्कि वह कुछ विशेष प्रकार या प्रवर्ग के व्यय तक ही स्वयं को सीमित रखता है। जब एक बार यह मंजूर कर लिया जाता है कि यह आवश्यक नहीं है कि कर विषयवस्तु के संपूर्ण क्षेत्र को ही निःशेष करे, तब विषयवस्तु की वह सीमा, जो कर अधिरोपित करने के लिए सम्मिलित या चयनित की जानी चाहिए, पूर्णतः संसद् पर छोड़ दी जानी चाहिए और वह केवल विभद या अयुक्तियुक्तता के किसी मापदंड के ही अधीन होनी चाहिए, जिसे संविधान के भाग 3 के उपबंध लागू हों।

40. तथापि, इस तथ्य का कि 1987 वाले अधिनियम द्वारा केवल ऐसी मदों पर व्यय को कराधीन बनाने की ईप्सा की गई है, जिन्हें विलास वस्तुओं के रूप में वर्णित किया जा सकता है, श्री पालखीवाल ने अपनी इस दूसरी दलील का समर्थन करने के लिए उपयोग किया है (जिससे वस्तुतः मुझे काफी परेशानी हुई है) कि विधानों के दोनों सैटों का सारतत्व एक जैसा है, कि उनके द्वारा केवल विलास-वस्तुओं या मनोरंजनों पर ही कर अधिरोपित किया गया है और यह कि राजस्व विभाग की ओर से किए जाने के लिए ईप्सित अंतर कि एक विलास वस्तुओं पर कर है, जबकि दूसरा किसी व्यक्ति द्वारा विलास-वस्तुओं पर उपगत व्यय पर कर है, केवल नाम का ही अंतर है। विलास-वस्तुओं पर कर का उद्देश्य और प्रभाव केवल विलास-वस्तुओं पर व्यय को नियंत्रण में रखना है और ऐसा कर विलास-वस्तुओं की व्यवस्था करने वाले व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति पर अधिरोपित, उद्गृहीत या संगृहीत किया जा सकता है जो उनका उपभोग करता है। व्यय कर का उद्देश्य भी वैसा ही है और वह भी ऐसे व्यक्ति पर, जो प्रत्यक्ष रूप से या किसी अन्य व्यक्ति की मार्फत धन का व्यय करता है या ऐसे किसी व्यक्ति पर भी उद्गृहीत किया जा सकता है, जो ऐसा व्यय उपगत करके फायदा उठाता है। विलास-वस्तु की व्यवस्था और उसके लिए संदाय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और किसी भी व्यावहारिक दृष्टिकोण से वे कराधान के दो पृथक् और स्वतंत्र विषय-वस्तु नहीं माने जा सकते हैं। यह सुस्थापित प्रतिपादना है कि विधायी सूचियों की प्रविष्टियों को व्यापकतम अर्थ दिया जाना चाहिए और इसलिए उन पर व्यय के प्रति निर्देश से विलास-वस्तुओं पर कर स्पष्टतः राज्य सूची की प्रविष्टि के अधीन आएगा। अतः, विधानों के दोनों सैटों का सारतत्व केवल राज्य सूची की प्रविष्टि सं० 62 के अधीन आता है। ऐसी स्थिति में सूची I की प्रविष्टि सं० 97 बिल्कुल भी लागू नहीं होगी। उसकी सहायता केवल ऐसे विषयों को सम्मिलित करने के लिए ही ली जा सकती है, जो विनिर्दिष्ट रूप से प्रगणित नहीं किए गए हैं या ऐसे करों को सम्मिलित करने के लिए ली जा सकती है, जिनका सूची II या III में उल्लेख नहीं किया गया है। अतः यह दलील दी गई है कि सूची I की प्रविष्टि सं० 97 के प्रति निर्देश से 1987 वाले अधिनियम की विधिमान्यता कायम रखना संभव नहीं है।

41. विद्वान् महान्यायवादी ने इस दलील का दो प्रकार से उत्तर देने का प्रयास किया। सर्वप्रथम उन्होंने यह दलील दी कि दोनों विधानों का सारतत्व भिन्न है। तदर्थ

प्रभारित या संदत्त रकम के प्रति निर्देश ले देखे (मापे) जाने पर, विलास-वस्तुओं पर कर फिजूल और दिखावटी व्यय को नियंत्रित करने के कर से पूर्णत: भिन्न है; यद्यपि किसी विशेष कानून द्वारा कराधान के लिए लाए गए व्यय के प्रवर्ग निर्बंधित किए जा सकते हैं। पश्चात्‌कथित को 'विलास-वस्तुओं पर कर के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है और वह राज्य सूची की प्रविष्टि 62 की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है और सूची II की किसी अन्य प्रविष्टि के प्रति निर्देश्यता के अभाव में, वह अनुच्छेद 248 (2) के अधीन चुनौती से मुक्त है और यदि आवश्यक हुआ, तो वह सूची I की प्रविष्टि 97 के अधीन भी आएगा। दूसरा तर्क यह है कि ऊपर निर्दिष्ट आजमझा वाले मामले में विनिश्चय किए जाने के पश्चात्, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि 'व्यय पर कर' सूची I की प्रविष्टि 97 के अंतर्गत विधान होगा, संवैधानिक स्थिति वही है, मानो मद सं० 97 से पूर्व सूची I में एक विनिर्दिष्ट प्रविष्टि अंत:स्थापित की गई थी (जैसे, प्रविष्टि सं० 96 क), जो 'व्यय पर कर' के रूप में है। उनका यह कहना है कि इसका परिणाम यह हुआ है कि केंद्रीय विधान सीधे सूची I की प्रविष्टि के अंतर्गत आएगा और इसलिए हमें इस संबंध में कोई अन्वेषण करने की आवश्यकता नहीं है कि वह सूची III या सूची III की किसी प्रविष्टि के अंतर्गत आता है या नहीं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा दिए गए दूसरे तर्क में कुछ दोष है। मैं नहीं समझता कि विधायी सूचियों का इस धारणा के आधार पर निर्वचन किया जा सकता है, जैसा कि उनके द्वारा सुझाव दिया गया है, कि 'व्यय पर कर' एक समझी गई प्रविष्टि है, जो ऊपरनिर्दिष्ट आजमजाह वाले मामले में किए गए विनिश्चय के परिणाम स्वरूप सूची I में जोड़ी गई। इस न्यायालय के विनिश्चय के आधार पर विधायी सूचियों में प्रविष्टियां नहीं जोड़ी जा सकती हैं। ऊपरनिर्दिष्ट आजमझा वाले मामले में अधिनियम का सारतत्व, जिस पर विचार किया गया था, सूची II या III की किसी प्रविष्टि के अंतर्गत नहीं आता था। ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय ने उसकी विधिमान्यता प्रविष्टि सं० 97 के प्रति निर्देश से कायम रही, जिसमें उसके सार तत्व को ध्यान में रखते हुए, कर को 'व्यय पर कर' के रूप में वर्णित किया। तथापि, यहां हमारे समक्ष ऐसा विधान है, जिसके अंतर्गत केवल कुछ प्रकार के व्यय ही आते हैं, और याचियों ने यह दलील दी है कि ये सभी विलास-वस्तुओं से संबंधित व्यय की मदें हैं। ऊपरनिर्दिष्ट आजमझा वाले मामले में किए गए विनिश्चय से हमें यह अवधारित करने के लिए कोई सहायता नहीं मिल सकती है कि क्या हमारे समक्ष वाले विधान का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा व्यय पर कर अधिरोपित किया गया है या विलास वस्तुओं पर कर अधिरोपित किया गया है: यदि इस बात के बावजूद कि उसमें विलास-वस्तुओं से संयोज्य केवल कुछ प्रकार के व्यय पर ही चर्चा की गई है उसे सारत: विलास-वस्तुओं पर कर नहीं कहा जा सकता, तो हम यह अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि संसद् उसके प्रति निर्देश से विधान बना सकती है और सुविधा के प्रयोजन के लिए, उसे सूची I की प्रविष्टि 97 पर आधारित करने के लिए, व्यय पर कर के रूप में उसके वर्णन का फायदा ले सकती है। दूसरे शब्दों में सूची I की प्रविष्टि 97 हमारी कोई सहायता नहीं कर सकती है, जब तक कि हम यह कहने की स्थिति में न हों कि प्रश्नगत केंद्रीय विधान का सारतत्व विलास-वस्तुओं, मनोरंजनों या आमोदों पर कर नहीं है। अब हम विद्वान् महान्यायवादी के तर्क के प्रथम भाग पर आते हैं।

42. क्या अधिनियम द्वारा उद्गृहीत व्यय पर कर और विलास-वस्तुओं पर कर के बीच कोई मान्य और सही अन्तर है। क्या संसद् और राज्य विधानमंडल एक ही 'विषय' के संबंध में चर्चा कर रहे हैं और क्या वे एक ही चीज पर कर अधिरोपित कर रहे हैं, यद्यपि उसका भिन्न रीति में वर्णन कर रहे हैं —या क्या वे दो भिन्न चीजों या वस्तुओं पर कर अधिरोपित कर रहे हैं। श्री पालखीवाला का यह कहना है कि कराधान की विषय-वस्तु 'विलास वस्तु' है और उस पर उपगत व्यय को पृथक् और सुभिन्न विषयवस्तु मानना निरर्थक है। उन्होंने यह कहा है कि ऐसे तर्क के स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप पृथ्वी की प्रायः प्रत्येक वस्तु की बाबत दोहरा कराधान करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, क पर ख द्वारा उसे संदत्त वेतन या ब्याज या लाभांश की बाबत उसकी आय के रूप में, कर लगाया जा सकता है, और उसके साथ ही, ख से ऐसे वेतन, ब्याज या लाभांश के संदाय के रूप में उसके द्वारा उपगत व्यय पर कर का संदाय करने के लिए कहा जा सकता है। क से, उसके द्वारा अर्जित आस्तियों के पूंजी-मूल्य पर धन कर का संदाय करने के लिए और ऐसे अर्जन पर व्यय किए गए धन पर व्यय-कर का संदाय करने के लिए भी कहा जा सकता है। क से उसके द्वारा ख को बेचे गए माल पर विक्रय-कर का संदाय करने और ख द्वारा उसे खरीदने के लिए उपगत व्यय पर कर संदत्त या संगृहीत करने के लिए भी कहा जा सकता है। उनका यह कहना है कि ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिससे उक्त तर्क की निरर्थकता सिद्ध हो जाएगी।

43. दूसरी ओर महान्यायवादी ने यह निवेदन किया है कि यह प्रश्न कि क्या दोनों विधान एक ही विषय से संबंधित हैं, विवादग्रस्त मुद्दे को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं करता है। उन्होंने यह कहा है कि यदि इस संदर्भ में 'विषय' पद को उसके व्यापकतम अर्थ में समझा जाता है तो उससे सूचियों के निर्वचन के विषय में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। उनके अनुसार, सार और तत्व के सिद्धांत को लागू करने के लिए, हमें विषय पद को 'सकल' अर्थ में नहीं, बल्कि 'दुर्लभ' (विरल) अर्थ में समझना है। उन्होंने कुछ पाठ्यपुस्तकों और न्यायिक विनिश्चयों में यथास्पष्टीकृत, 'पहलू' वाले नियम के रूप में ज्ञात नियम का अवलंब लेते हुए, अपनी दलील आगे बढ़ाई है।

44. ए० एच० एफ० लेफराय ने अपनी कृति 'केनाडियन कांस्टीट्यूशन' के पृ० 98 पर यह कहा है —

> "**धारा 21. विधान का पहलू :** क्या ऐसे विषय, जो एक पहलू में और एक प्रयोजन के लिए फैडरेशन ऐक्ट की धारा 92 के अंतर्गत आते हैं और इसलिए प्रांतीय विधान के लिए समुचित हैं, अन्य पहलू में और अन्य प्रयोजन के लिए धारा 97 के अंतर्गत आ सकते हैं और इसलिए वे डोमिनियन विधान के लिए समुचित हो सकते हैं। और जैसा कि ऐसे मामलों से दर्शित होता है, जो इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हैं, यहां पहलू से विधान के उद्देश्य, प्रयोजन और परिधि के विषय में, विधान बनाते समय विधायक का दृष्टिकोण या पहलू माना जाना चाहिए। उक्त शब्द का प्रयोग विधायक के संबंध में व्यक्तिपरक रूप से किया गया है, न कि ऐसे विषय की बाबत वस्तुपरक रूप से, जिस पर विधान बनाया गया है।"

न्या० वैंकटाचलय्या के निर्णय में उद्धृत, लास्किनकृत 'केनाडियन कांस्टीट्यूशनल ला' का अंश भी इसी आशय का है। संघीय न्यायालय (फैडरल कोर्ट) ने भी **मध्य प्रांत और बरार अधिनियम**[1] वाले मामले में 'पहलू' वाले सिद्धांत के विषय में पृ० 49 पर यह कहा है :—

> "यहां दो पृथक् अधिनियमितियां हैं, और प्रत्येक द्वारा एक पहलू में माल पर कर अधिरोपित करने की शक्ति प्रदत्त की गई है; और अधिक साधारण शक्ति लेना अर्थान्वयन के ठोस सिद्धातों के अनुरूप होगा ऐसी जो किसी विशेष शक्ति द्वारा सजित अपवाद के अधीन रहते हुए, संपूर्ण भारत को विस्तारित होती है, ऐसी जो केवल प्रान्त को ही लागू होती है।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम **इंडियन एल्यूमीनियम कंपनी**[2] वाले मामले में भी विधान के 'पहलू' के प्रति ऐसा ही निर्देश देखा जा सकता है—

> "केरल विद्युत बोर्ड की ओर से हाजिर होते हुए, विद्वान् महासालिसिटर का अपने इस निवेदन के संबंध में तर्क कि विधान सूची II की प्रविष्टि 26 और 27 के अंतर्गत आता है, संक्षिप्ततः इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है : उन प्रविष्टियों द्वारा आयुध, गोला-बारूद, परमाणु खनिज आदि जैसे सभी कल्पनीय माल के संबंध में विधान बनाने के लिए राज्य विधानमंडलों को समर्थ नहीं बनाया गया है, जैसा कि श्री सेन द्वारा तर्क दिया गया। विधानमंडल, अपनी सक्षमता के अंतर्गत आने वाले विषयों (मामलों) के संबंध में विधान बनाते समय, अपनी सीमाएं और अपना विधायी प्राधिकार समझता है—ऐसा माना जाना चाहिए और उनके बारे में यह धारणा नहीं की जानी चाहिए कि वह अपनी अधिकारिता से परे विधान बना रहा है। एक बात ध्यान में अवश्य ही रखी जानी चाहिए और वह यह है कि किसी विशेष विषय-वस्तु के संबंध में एक से अधिक पहलू भी हो सकते हैं।"

(जोर देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया।)

इन मताभिव्यक्तियों द्वारा समर्थित, उक्त सिद्धांत का अवलंब लेते हुए, विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया है कि, ठीक रूप से समझे जाने पर, 1987 वाले अधिनियम का सारतत्व 'व्यय' है, न कि 'विलास-वस्तु'।

45. पहली दृष्टि में, विद्वान् महान्यायवादी का तर्क कुछ सूक्ष्म और कृत्रिम प्रतीत हो सकता है किंतु कुछ विचार करने पर, वस्तुतः विधायी सक्षमता एक ही विषयवस्तु के विभिन्न पहलुओं के अनुसार अलग-अलग दिखाई पड़ेगी, जैसा कि उसे व्यापक अर्थ में समझा जाता है। कुछ विनिश्चित मामलों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रथम तीन मामले, जो भारत शासन अधिनियम के अधीन भारत में उद्भूत हुए, इस प्रकार हैं—**मध्य प्रांत और**

---

1 1949 एफ० सी० आर० 18.

2 1976 1 एस० सी० आर० 562, पृ० 573-74.

बरार अधिनियम (सेंट्रल प्रोविन्सेज एंड बरार ऐक्ट) (1953 का अधिनियम सं० 14)[1] वाला मामला, प्रोविन्स आफ मद्रास बनाम बोद्दूपैदन्ना एंड संस[2] वाला मामला, जी० जी० इन कौंसिल बनाम मद्रास प्रोविन्स (प्रांत)[3] वाला मामला। ये तीनों ही मामले इस प्रश्न के संबंध में थे कि क्या आक्षेपित कर माल के विक्रय पर कर था या वह उत्पाद-शुल्क था। 'विषयवस्तु' पद का व्यापक अर्थ में निर्वचन करते हुए, कदाचित् यह कहा जा सकता था कि दोनों ही माल की बाबत कर थे किंतु केवल यह संकल्पना ही मामले का निपटारा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी क्योंकि सुसंगत विधायी प्रविष्टियों में माल की बाबत करों का उल्लेख नहीं था, बल्कि उनमें माल के प्रति निर्देश्य दो भिन्न क्रियाकलापों की बाबत करों का उल्लेख किया गया था (जिसे सुविधा की दृष्टि से 'कराधेय घटना' के रूप में वर्णित किया गया); एक माल का विनिर्माण और उत्पादन; और दूसरा उसका विक्रय। इन विधायी प्रविष्टियों के प्रकाश में, दोनों भिन्न क्रियाकलापों को उचित ही कराधान के प्रयोजन के लिए दो भिन्न विषयों के रूप में समझा जा सकता था और सुसंगत विधान 'विक्रय' से संबद्ध विधान माना गया, न कि विनिर्माण से। दूसरे शब्दों में, दो अधिनियमितियां हो सकती हैं, 'जिनमें से प्रत्येक माल पर कर अधिरोपित करने के लिए एक पहलू में शक्ति प्रदत्त कर सकती है'। यह माना गया कि विधान केवल इस कारण दूषित नहीं था कि अतिव्याप्ति का तत्व मौजूद था क्योंकि उत्पाद-शुल्क और विक्रय-कर दोनों ही एक ही माल की बाबत एक ही निर्धारिती पर और एक ही विक्रय कीमत के प्रति निर्देश से उद्गृहणीय हो गए, जब विनिर्माण के पश्चात् प्रथम विक्रय होता है, एक विनिर्माण के पहलू के प्रति निर्देश से और दूसरा 'विक्रय' पहलू के प्रति निर्देश से। माल से संबंधित इन दो भिन्न पहलुओं का विभाजन स्वयं विधायी प्रविष्टियों की भाषा से न्यायोचित ठहरता है, जिनमें दो भिन्न सैटों के क्रियाकलापों के प्रति पृथक् रूप से निर्देश किया गया और उन्हें भिन्न-भिन्न विधायी सूचियों में रखा गया। पुनः, इसी सिद्धांत के आधार पर, विद्युत-विनिर्माण को, उसके अनिवार्य उपभोग के प्रक्रम (बिंदु) पर उत्पाद-शुल्क लागू किया जा सकता है (सूची I की प्रविष्टि 84 के अधीन) और बिजली के उपभोग या विक्रय पर कर भी अधिरोपित किया जा सकता है (सूची II की प्रविष्टि 53 के प्रति निर्देश्य)।

46. 'संपत्ति' की बाबत कर उद्ग्रहण करने की शक्ति ने ऐसी ही समस्याएं पैदा की हैं। सभी राज्य (या उनमें निगम और नगरपालिकाएं) स्वामी या अधिभोक्ता पर संपत्ति कर उद्गृहीत करते हैं, जिसे उसके वार्षिक मूल्य (अर्थात् वह किराया, जो उससे प्राप्त होगा, यदि उसे वर्षानुवर्ष आधार पर किराये पर उठाया जाता है) के प्रति निर्देश से प्रायः सामान्यतया मापा जाता है। आय-कर अधिनियम द्वारा भी उसी आधार पर कर प्रभारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, वास्तविक और व्यावहारिक अर्थ में, दोनों विधानमंडलों द्वारा कर उसी रकम पर और उसी विषय के प्रति निर्देश से उद्गृहीत किया गया। किंतु 1935 वाले अधिनियम के अधीन दोनों उद्ग्रहणों को कायम रखा गया है, पूर्वकथित को 'भूमियों और भवनों, घरों और वातायनों पर कर' के रूप में (सूची II की प्रविष्टि 42) और पश्चात् कथित

[1] 1939 एफ० सी० आर० 18.
[2] 1942 एफ० सी० आर० 90
[3] 1945 एफ० सी० आर० 179.

को आय पर कर के रूप में (सूची I की प्रविष्टि 84 के अधीन) । रल्ला राम[1] वाले मामले में यह उपदर्शित किया गया कि वे भिन्न प्रकार के उद्ग्रहण थे, एक भूमि और भवनों पर (सामान्यतः, किंतु अनिवार्यतः नहीं, व्युत्पन्न या व्युत्पन्न होने का योग्य आय के प्रति निर्देश से मापे जाने योग्य) और दूसरा उससे व्युत्पन्न आय पर (वास्तविक रूप से या काल्पनिक रूप से) । यह कहा गया कि पूर्वकथित का सार और तत्व आय (संपत्ति से) नहीं था, यद्यपि कर उसके आधार पर उद्गृहीत किया गया था । भिन्न रूप से अभिव्यक्त किए जाने पर, यह कहा जा सकता था कि यद्यपि दोनों कर संपत्ति की बाबत थे, तथापि उनका संबंध उपर्युक्त विषयवस्तु के भिन्न पहलुओं से था; प्रथम संपत्ति के स्वामित्व या अधिभोग के पहलू कर था; दूसरा संपत्ति से होने वाली आय के पहलू पर । **भगवान् दास जैन** बनाम **संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी इसी आशय का है ।

47. **हिंगीर-रायपुर कोल कंपनी**[3] वाला मामला उड़ीसा अधिनियम की विधिमान्यता से संबद्ध था, जिसमें गर्तमुख पर एकत्र किए गए कोयले के मूल्यांकन के 5 प्रतिशत से अनधिक उप-कर उद्गृहीत करने की ईप्सा की गई थी । उसमें यह प्रश्न अंतर्वलित था कि क्या यह सारतः और तत्वतः उत्पाद-शुल्क (सूची I की प्रविष्टि 84) था या कोयला खान उद्योग को विनियमित और नियंत्रित करने के लिए फीस (सूची II की प्रविष्टि 66 और 23) । यहां भी यद्यपि लाग (इम्पोस्ट) की वसूली करने के लिए अपनाई गई पद्धति वही थी, जो उत्पाद-शुल्क की थी, तथापि कर की विधिमान्यता कायम रखी गई क्योंकि वह उद्योग पर नियंत्रण के पहलू से संबद्ध था, न कि कोयले के उत्पादन पर लाग के पहलू से ।

48. **सैनिक मोटर्स**[4] वाला मामला ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है जो हमारे समक्ष विवादग्रस्त मुद्दे के अधिक निकट है । उक्त मामले में एक राजस्थान अधिनियम द्वारा यात्रियों या माल के लाने-ले जाने के लिए आपरेटरों द्वारा प्रभारित किराये और भाड़े के प्रति निर्देश से उसे मापते हुए, यात्रियों और माल पर कर उद्गृहीत करने का तात्पर्य व्यक्त किया गया । यदि उसे 'किराये और भाड़े' पर कर माना जाता तो वह आय पर कर होता, जो राज्य विधानमंडल द्वारा उद्गृहीत नहीं किया जा सकता था । किंतु यदि उसे सड़क से लाए-ले जाए गए यात्रियों और माल पर कर माना जाता तो वह सूची II की प्रविष्टि 56 के अधीन विधिमान्य था । अधिनियम की विधिमान्यता पश्चात्कथित आधार पर कायम रखी गई और न्यायालय ने यह उपदर्शित किया कि कर माल और यात्रियों पर था, यद्यपि उसे किराये और भाड़े के प्रति निर्देश से मापा (आंका) गया था । इस द्विधत्व को सूची 1 की प्रविष्टि 89 की भाषा के आधार पर, कदाचित, न्यायोचित ठहराया जा सकता था । उक्त प्रविष्टि द्वारा दोनों प्रकार की लागों के बीच अंतर किया गया है और यह दर्शित किया गया है कि एक ही विषय के दो भिन्न पहलू, अर्थात् यात्रियों या माल को लाने-ले जाने वाले वाहनों की बाबत कर, कराधान के लिए पृथक् विषय हो सकते हैं ।

49. उपर्युक्त प्रविष्टियों और विनिश्चयों के प्रकाश में, मैं समझता हूं कि विद्वान्

---

[1] 1948 एफ० सी० आर० 207.

[2] 1981-2 एस० सी० आर० 808.

[3] 1961-2 एस० सी० आर० 537.

[4] 1962-1 एस० सी० आर० 517.

महान्यायवादी का यह दलील देना सही है कि मात्र इस कारण कि 1987 वाले अधिनियम और राज्य अधिनियमों द्वारा ऐसे कर उद्‌गृहीत किए गए हैं, जिनका व्यक्तियों पर ऐसे अंतिम प्रभाव पड़ता है, जो कतिपय विलास-वस्तुओं का उपभोग करते हैं, दोनों का सार और तत्व एक जैसा नहीं माना जा सकता है। विलास-वस्तु पर कर का उद्देश्य कुछ विशेष प्रकार की प्रसुविधाओं, सुविधाओं और लाभों के उपभोग पर कर अधिरोपित करना है, जिन पर विधान-मंडल कर नियंत्रण अधिरोपित करना चाहता है। उसका आशय उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं की बेहतर ढंग से देख भाल करने के लिए समाज को प्रोत्साहन देना है, जो उनकी व्यवस्था स्वयं नहीं कर सकते हैं। उदाहणार्थ, विलास-वस्तु कर से पंचतारा होटलों की बजाय 'जनता होटल' के सन्निर्माण को प्रोत्साहन मिल सकता है। ऐसा कर विलास-वस्तु की पेशकश करने वाले व्यक्ति या उसका उपभोग करने वाले व्यक्ति पर हो सकता है। वह विलास-वस्तु की व्यवस्था करने के लिए प्राप्त रकम, या विलास-वस्तु का उपभोग करने के लिए संदत्त या खर्च की गई रकम के आधार पर उद्‌गृहीत किया जा सकता है। बोधगम्य रूप से, वह दो भिन्न आधारों पर हो सकता है, व्यय-कर का उद्देश्य और यह बात कि बोधगम्य रूप व्यय-कर हो सकता है, ऊपरनिर्दिष्ट आज़मझा वाले मामले से सिद्ध हो जाती है, ऐसे व्यय को निरुत्साहित करना है जिसे विधानमंडल फिजूल या दिखावटी समझता है। प्रथम कर का उद्देश्य कुछ विशेष प्रकार की जीवन-पद्धतियों या उपभोग को निरुत्साहित करना है, जबकि दूसरे का उद्देश्य लोगों को अनुत्पादक या अवांछनीय बातों में व्यय उपगत करने के लिए निरुत्साहित करना है। यदि 1957 वाले अधिनियम के समान साधारण व्यय-कर अधिनियम अधिनियमित किया जाता है, तो उसकी विधिमान्यता को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती थी क्योंकि उसके द्वारा प्रासंगिक रूप से विलास-वस्तुओं पर उपगत व्यय पर कर उद्‌गृहीत किया गया था। इस तथ्य को कि उस समय कुछ अतिव्याप्ति होगी या कि यहां-वहां ऐसी काफी अतिव्याप्ति है, क्योंकि राज्यों ने कुछ प्रकार की विलास-वस्तुओं पर ही कर अधिरोपित करना उचित समझा है और सरकार ने कम से कम फिलहाल केवल ऐसे व्यय पर कर अधिरोपित करना उचित समझा है जो ऐसी विलास-वस्तुओं पर खर्च होता है, लागों के दोनों प्रवर्गों के बीच आधारभूत अंतर पर पर्दा नहीं डालने दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि अभिकथित टकराव थियेटरों के सन्निर्माण या रेस हार्स स्थापनों के रख-रखाव या वैसी ही अन्य चीजों में उपगत व्यय पर कर लगाने वाले संसद् के अधिनियम और वर्तमान राज्य अधिनियमों के बीच होता, तो कोई भी अतिव्याप्ति नहीं होती और केंद्रीय कर का सार तत्व 'व्यय' के रूप में वर्णित किया जा सकता था, न कि विलास-वस्तुओं के रूप में। ये अंतर केवल इस परिस्थिति के कारण समाप्त नहीं हो सकता है कि दोनों विधान-मंडलों ने उसी मेद्य क्षेत्र को आपत्ति के लिए चुना है, एक ने विलास-वस्तु पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से और दूसरे ने अवांछनीय 'व्यय' को नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से।

50. इन कारणों से, मैं अपने विद्वान् बंधु न्या० वेंकटाचलय्या से इस बात पर सहमति व्यक्त करता हूं कि तीनों आक्षेपित अधिनियमितियों की विधिमान्यता कायम रखी जानी चाहिए और ये रिट याचिकाएं और अपील खारिज कर दी जानी चाहिए।

रिट याचिकाएं और अपीलें खारिज की गईं।

सु०/वन०